योग के चमत्कार

श्रीरामनाथ 'सुमन'

साधना सदन

दिल्ली :: काशी
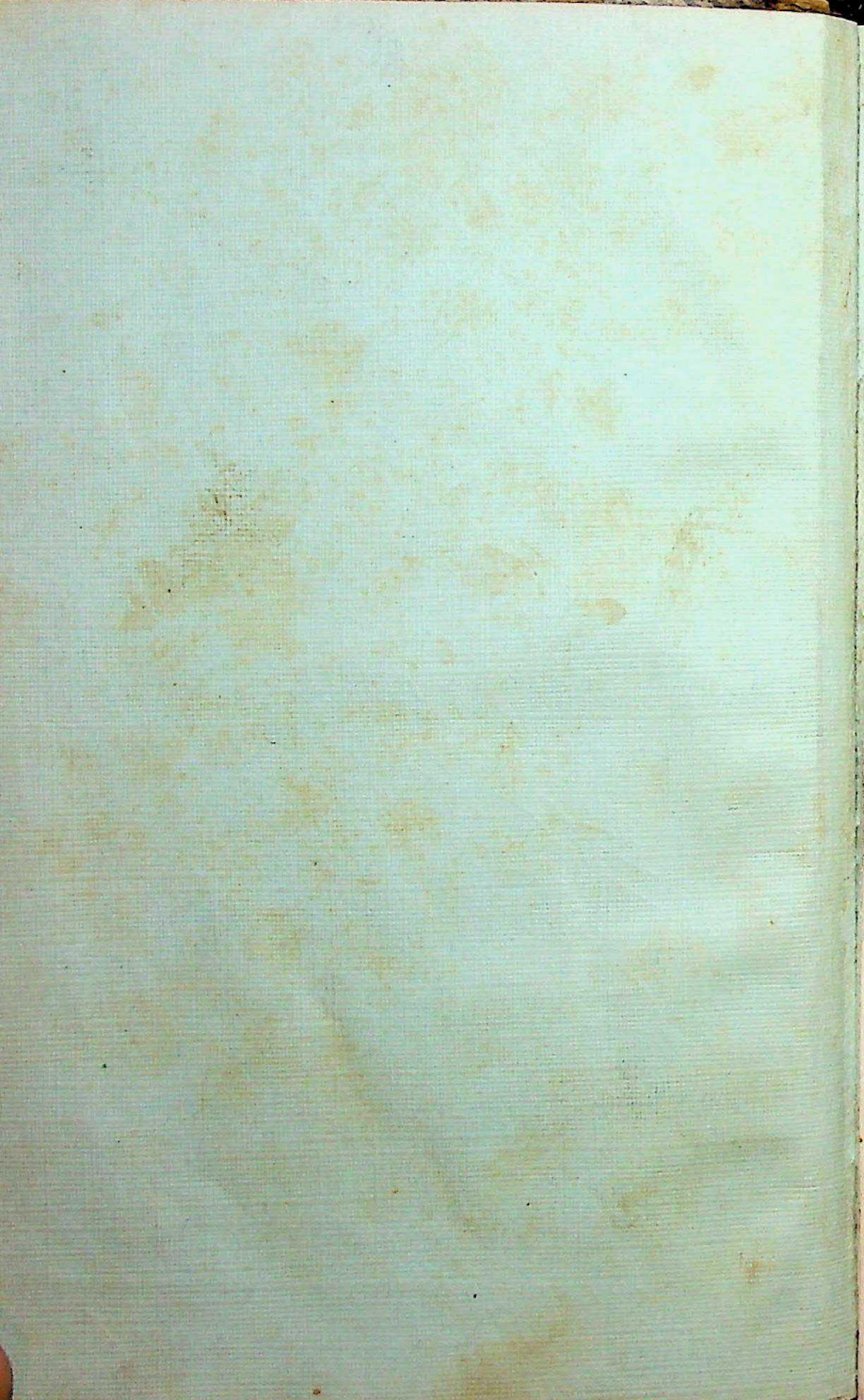
साधना-सदन-माला : २

Yog ka chamatkar

योग के चमत्कार

[योग से प्राप्त होनेवाली शक्तियों एवं चमत्कारों का वर्णन]

Ramnath

श्री रामनाथ 'सुमन'

: प्रकाशक :

साधना-सदन

किंग्सवे, दिल्ली] और [चेतगञ्ज, काशी

Sadna sadan
Delhi

सवा रुपया

प्रकाशक :

साधना-सदन

काशी : दिल्ली ।

प्रथम वार २१००	मार्च, १६३६ 1939	मूल्य सवा रुपया

मुद्रक :

भारत प्रिण्टिङ्ग वर्क्स,

नया बाज़ार, दिल्ली ।

भूमिका

० ० ०

मनुष्य में असीम संभावनाएं और शक्तियाँ मूर्च्छित छिपी पड़ी हैं। हम स्वयं भी नहीं जानते कि हम में असीम शक्ति है। इस अज्ञान और मोह के कारण छोटी-छोटी बातों पर भी हमें आश्चर्य होता है। यदि हम साधना द्वारा अपनी छिपी एवं सुप्त शक्तियों को जाग्रत कर लें तो कोई ऐसी बात नहीं जिसे हम सरलतापूर्वक न कर सकें।

इस दिशा में भारतीय योग ने बड़ी सफलता प्राप्त की है। हम योगियों के वर्णन पढ़कर प्रायः उन्हें क़िस्से कहकर अपने हृदय में अहंकार का अनुभव करते हैं पर इसका कारण यह नहीं है कि बातें अवैज्ञानिक हैं या झूठी हैं बल्कि यह कि हम नशे में हैं, अचेत हैं, हमें अपनी शक्ति का भान नहीं है। हममें घोर अश्रद्धा और आत्मवञ्चना भर गई है।

जो अन्ध अश्रद्धा आज हममें फैली हुई है उसने हमारी आत्मा को विकृत और शिथिल कर रखा है। आत्म-विश्वास क्षीण होगया है। जीवन कृत्रिमताओं से भर गया है। कदाचित् युरोपीय सभ्यता ने हमारा सबसे अधिक अहित यही किया है। इसने हमें सुविधाएँ दी हैं पर हमारी शक्ति हर ली है। इसने हमारे शरीर की रक्षा की पर आत्मा में आग लगा दी है। इसने हमें एक पर-

मुखापेक्षी, अनात्मवादी जाति बनाकर हमें दुनिया के मार्ग पर अपना दैन्य प्रदर्शित करने और भिक्षा माँगने के लिए छोड़ दिया है।

गाँधीजी इस दिशा में एक महान् विरोध की तरह अचल हैं। उन्होंने पहली बार व्यापक रूप से हमें अपनी ओर, अपनी आत्मा की ओर देखने की शिक्षा दी। और वर्तमान अश्रद्धा के युग में वह जाग्रत श्रद्धा की एक लौ की भांति जलकर अन्धकार में हमारे मार्ग को प्रकाशित कर रहे हैं।

पर अश्रद्धा बढ़ती ही जाती है। अपने विज्ञानों एवं विद्याओं पर से हमारी आस्था उठ गई है। अपने में ही हमारा विश्वास नहीं रह गया है।

इसलिए यह स्वाभाविक है कि योग की अद्भुत शक्तियाँ और चमत्कारों की बात पढ़कर या सुनकर हम अविश्वास की एक हँसी हँस दें। पर कदाचित् हम भूल जाते हैं कि इन चमत्कारों में कुछ भी अवैज्ञानिक या अप्राकृतिक नहीं है। आधुनिक विज्ञान की गति भी उधर ही है और वह समय दूर नहीं है जब वैज्ञानिक जगत् को यह देखकर आश्चर्य होगा कि जो कुछ वह जान सका है उससे बहुत अधिक उसके पूर्व ही जाना जा चुका है।

इस पुस्तक में यथासम्भव प्रामाणिक स्रोतों से ही तथ्यों का संग्रह किया गया है और ऐसे योगियों एवं महात्माओं का ही ज़िक्र किया गया है जो बीसवीं सदी के हैं—जो आज भी मौजूद हैं या अभी कुछ ही दिन पूर्व तक थे—जिन्हें लोगों ने, बड़ी

तादाद में, स्वयं देखा है। इसलिए इन वर्णनों एवं विवरणों पर शङ्का करने का कोई कारण नहीं है।

❀ ❀ ❀

योग का उद्देश्य सिद्धियों की प्राप्ति नहीं है। चमत्कारों का प्रदर्शन उच्च योग में सर्वथा निषिद्ध है क्योंकि इससे अहंकार बढ़ता है और साधक के लक्ष्य से हट जाने का डर रहता है। योग का उद्देश्य आत्मदर्शन एवं मोक्ष है। ये सिद्धियाँ साधना में योगी को सहज उपलब्ध होती हैं। पर आजकल साधारण जनता जिस स्तर पर है उसमें इन चमत्कारों के कारण आध्यात्मिक विषयों एवं शक्तियों में लोगों को आस्था होती है; कुछ विश्वास होता है। इसलिए इन पृष्ठों में हमने अभूतपूर्व शक्तियों का वर्णन किया है। आगे योग-साधना पर भी किसी योग्य अधिकारी से पुस्तक लिखाकर प्रकाशित कराने का मेरा विचार है।

इस पुस्तक की सामग्री का संकलन करने में मुझे श्री पाल-ब्रण्टन की 'ए सर्च इन सीक्रेट इण्डिया' तथा 'कल्याण' (गोरखपुर) से बड़ी सहायता मिली है। इनके बिना कदाचित् पुस्तक लिखी ही न जाती। इस सिलसिले में मेरे पास विविध भाषाओं में बहुत-सी सामग्री एकत्र हो गई है और यदि पाठकों ने इस पुस्तक को अपनाया तो दूसरे संस्करण में काफ़ी वृद्धि करने का मेरा इरादा है।

साधना-सदन,
किंग्सवे, दिल्ली २०-२-३९

—श्री रामनाथ 'सुमन'

विषय-सूची

—:०:—

: १ :

क्या मृत्यु पर विजय संभव है ?

क्या मनुष्य मृत्यु पर विजय पा सकता है ? क्या मृत्यु, शोक और मूर्च्छना के इस जगत् में चिरन्तन जीवन, निरतिशय आनन्द और चिर-जागरण संभव है ? क्या इस मर्त्य लोक में कहीं अमृत का झरना है ? क्या मनुष्य इच्छानुसार अपने जीवन को घटा-बढ़ा सकता है और क्या जगत् के इस परदे की ओट में सचमुच कोई चिर-जीवन एवं आत्मानन्द का रहस्य छिपा है ?

सभ्यता के आरंभ से मनुष्य के मन में ये प्रश्न उठते रहे हैं। मेरे मन में भी बचपन से ये प्रश्न उठते रहे हैं। मेरे परनाना (नाना के पिता) स्वयं एक अच्छे साधक थे। मैं १५-१६ वर्ष की आयु तक उन्हीं के पास रहा। उनके गुरु एक अच्छे योगी थे और उनकी शक्ति एवं चमत्कार की अनेक देखी हुई कहानियाँ मेरी माँ मुझे सुनाया करती थी। इन्हें सुन-सुनकर मेरा मन कुतूहल से भर जाता और मेरे मन में एक प्यास प्रबल होती जाती। बचपन से ही मैं एक चिन्ताशील प्रकृति का व्यक्ति रहा हूँ। कुछ मेरी प्रकृति और कुछ वातावरण, दोनों ने आध्यात्मिक प्रवृत्तियों को

मुझ में जाग्रत किया। किशोरावस्था में मुझे श्री स्वामी गंगानन्दजी महाराज नाम के एक अच्छे योगी के परिचय में आने का अवसर मिला। इन्होंने अपनी आयु का अधिकांश हिमालय की गुफाओं में बिताया था और स्वयं एक अच्छे हठयोगी थे। मैंने उनसे दीक्षा ली और उनके द्वारा ही मुझे मालूम हुआ कि योगाभ्यास से अत्यन्त आश्चर्यजनक शक्तियाँ प्राप्त की जा सकती हैं और अब भी ऐसे योगी हैं, जो इच्छानुसार अपनी आयु को कई-सौ वर्षों तक बढ़ा सकते हैं और जिनके जीवन में समय एवं स्थान का व्यवधान बिल्कुल मिट गया है; वे हज़ारों मील दूर की चीज़ों को देख एवं उनपर प्रभाव डाल सकते हैं और भूत एवं भविष्य सब उनकी आँखों में प्रकाश-किरण की भाँति स्पष्ट हैं।

आज जब पश्चिम के वैज्ञानिकों के सामने यह प्रश्न खड़ा हुआ है कि क्या मनुष्य बहुत दिनों तक युवा रखा जा सकता है और उसकी आयु कई-गुनी बढ़ाई जा सकती है और जब आयुर्वेद की विख्यात काया-कल्प चिकित्सा ने भी जीवन एवं यौवन की अमित संभावनाएँ हमारे सामने उपस्थित करदी हैं; जब विज्ञान को अपने प्रयोगों के सिलसिले में ऐसे प्रमाण मिले हैं कि जीवन की सीमा बढ़ाई जा सकती है—चाहे तुरन्त सफलता न मिले, तब यदि कोई योगी हिमालय के उस तुषार-धवल एकान्त से हमारे जन-संकुल मैदानों में आकर आज के संदेह-ग्रस्त संसार के तर्क को चैलेंज करके अपने को उपस्थित कर सकता, तो दुनिया देखती कि पश्चिम के ये जीवन-अमृत के अन्वेषण में मग्न वैज्ञानिक जिसका केवल

आभास-मात्र पा सके हैं, वह बहुत पहले से भारतीय योगी अथवा अन्य देशों के आध्यात्मिक शक्ति से पूर्ण व्यक्तियों के लिए साधारण-सी बातें हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

पश्चिम की अशान्ति उत्पन्न करने वाली वैज्ञानिक सभ्यता में पले हुए, शोधी एवं वैज्ञानिक प्रकृति के कई आदमी, शान्ति की खोज में समय-समय पर पूर्व की यात्रा करते रहे हैं। असाधारण शक्ति-सम्पन्न योगियों की खोज में भी कई ऐसे व्यक्ति पूर्व की ओर—भारत, हिमालय, तिब्बत इत्यादि देशों की ओर—आते रहे हैं। मैडम ब्लैवेटस्की ने भी हिमालय एवं तिब्बत से ही दूर-दर्शन (Clairvyance) की शक्ति का रहस्य प्राप्त किया था। कुछ दिनों पूर्व मेजर ईट्स ब्राउन नाम के एक सज्जन भारत आये थे। वैसे तो यह साम्राज्यवादी हैं, पर योग-सम्बन्धी विषयों में बड़ी दिलचस्पी रखते हैं और योग की प्रारंभिक जानकारी के लिए एक स्कूल भी इन्होंने इंग्लैण्ड में खोल रखा है। इनको अपनी यात्रा के सिलसिले में अनेक आश्चर्यजनक बातें मालूम हुईं। सर फ्रांसिस यंगहसबैण्ड (के० सी० एस० आई०) भी योगियों के विषय में बड़ी दिलचस्पी लेते रहे हैं। कई वर्ष पूर्व जब एवरेस्ट (गौरीशंकर)—शृङ्ग पर आरोहण करने का प्रयत्न किया गया था तब सैकड़ों वर्ष की आयु वाले कई योगियों के होने का पता उस ओर मिला था और एक ने अपनी दृष्टि-शक्ति से एक पर्वत-खण्ड के टुकड़े-टुकड़े कर दिये थे। जब-जब गौरीशंकर शृङ्ग पर

चढ़ाई हुई है, कुछ-न-कुछ आश्चर्यजनक एवं असाधारण अनुभव आरोहियों को होते रहे हैं।

कई साल हुए, जब पाल ब्रण्टन नाम के एक अँग्रेज़ पत्रकार योगियों की खोज में भारत आये थे। ब्रण्टन आधुनिक विज्ञान के एक अत्यन्त प्रतिभाशाली विद्यार्थी थे और अब भी हैं। उन्हें संसार का दीर्घ अनुभव था। वह निर्लिप्त भाव से, आँखों से देखकर, योगियों के विषय में जाँच करना चाहते थे। महीनों वह भारत के दुर्गम प्रान्तों में भटकते रहे और इस बीच उन्हें जो अनुभव हुए और जो बातें उन्होंने देखीं, उन में से अनेक का वर्णन उन्होंने अपनी पुस्तक 'गुप्त भारत की खोज' (A Search in Secret India) में किया है। उन्होंने अपनी पुस्तक में न केवल योगियों का वर्णन किया है, वरन् इन मृत्युञ्जय योगियों के शोध में किसी असाधारण शक्ति रखनेवाले आदमी से उनकी भेंट हुई है तो उसका भी विवरण दिया है। पहले मैं योगियों की बातों को लूँगा। अन्य चमत्कारकर्ताओं, जादूगरों इत्यादि का वर्णन आगे यथास्थान आयेगा।

योगी ब्रह्मसुगन्ध

श्री ब्रण्टन मद्रास के बाहर एक उपनगर में ठहरे हुए थे। उन्होंने एक ब्राह्मण को अपना साथी चुना था और उसे बता दिया था कि मैं योगियों की खोज में हूँ। एक दिन प्रातःकाल दोनों अडयार नदी के किनारे-किनारे टहल रहे थे कि ब्राह्मण ने ब्रण्टन का हाथ पकड़कर कहा—

"वह देखो! सामने जो व्यक्ति आ रहा है, उसे लोग योगी बताते हैं। उससे आप बहुत कुछ जान सकते हैं परन्तु दुःख है कि हम लोगों से वह कभी बात नहीं करता।"

"क्यों?"

"पता नहीं। मैं उसका निवास-स्थान जानता हूँ; परन्तु वह अत्यन्त गंभीर और एकान्तप्रिय व्यक्ति है।"

श्री ब्रण्टन लिखते हैं—"इतने में वह आदमी बिल्कुल पास आ गया। उसका शरीर व्यायाम-विशारद की तरह था। उम्र ३५ वर्ष के लग-भग होगी। मध्यम क़द से ज़रा ऊँचा। काला चमड़ा, चौड़े नथने, मोटे ओठ और पुट्ठेदार शरीर सब उसके अनार्य रक्त को स्पष्ट कर रहे थे। सिर पर भी बँधे बालों का गुच्छा। एक सफ़ेद चादर कन्धे से ओढ़े हुए। नंगे पैर.....। हम लोगों की ओर उसका बिल्कुल ध्यान नहीं है और वह धीरे-धीरे आगे बढ़ा जा रहा है। आँखें नीचे हैं, जैसे ज़मीन का अन्वेषण कर रही हों। ऐसा भाव आता है, मानो उन आँखों के पीछे मन किसी विषय के गंभीर विचार में तल्लीन है।

"मेरे हृदय में बीच के बन्धनों को तोड़कर उससे परिचय करने की इच्छा अकस्मात् जाग उठती है।"

"पीछे लौटो; मैं उससे बात करना चाहता हूँ।" ब्रण्टन ने ब्राह्मण साथी से कहा।

"ऐसा करना व्यर्थ है।" ब्राह्मण ने उत्तर दिया।

"प्रयत्न तो कर देखूँ।"

"वह व्यक्ति इतना अलभ्य है कि हम लोग उसके बारे में कुछ नहीं जानते। वह अपने पड़ोसियों से बिल्कुल अलग और एकान्त में रहता है। हमें उसके बीच में नहीं पड़ना चाहिए।"

"कृपया पूछो कि क्या मैं उससे बात कर सकता हूँ ?"

"नहीं, मैं यह साहस नहीं कर सकता।"

अन्त में श्री ब्रण्टन ने स्वयं हिम्मत की। जल्दी-जल्दी आगे बढ़कर योगी के सामने पहुँच गये; किन्तु वह उस समय तक न भलीभांति हिन्दी ही जानते थे, न तमिल। सौभाग्य से इस समय ब्राह्मण भी वहाँ आ गया और डरते-डरते उसने योगी से तमिल में कुछ कहा।

योगी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसका चेहरा कड़ा पड़ गया और आँखों में उपेक्षा का भाव आ गया। कुछ देर इसी तरह बीता। श्री ब्रण्टन को, इसी समय, यह अनुभव हुआ मानो योगी उनके हृदय को बेधकर वहाँ जो कुछ है उसे माइकस्कोप (अणु-वीक्षण यन्त्र) की सूक्ष्मता के साथ देख रहा है। कुछ क्षण इसी प्रकार बीते और श्री ब्रण्टन अकृतकार्य और निराश-से लौटने ही वाले थे कि योगी ने हाथ से पीछे आने का इशारा किया और कुछ दूर पर एक तमाल वृक्ष के पास पहुँचकर सब लोग बैठ गये। योगी ने ब्राह्मण को, मधुर वाणी में, वार्तालाप करने की स्वीकृति दी। इस योगी का नाम ब्रह्मसुगन्ध था; पर संक्षेप में मैं उसे ब्रह्म लिखूँगा। श्री ब्रण्टन और उसके बीच निम्नलिखित बातें हुई—

ब्रण्टन—आप किस प्रकार का योगाभ्यास करते हैं ?

योगी—हठ योग। यह सब योगों से कठिन है। इसके द्वारा शरीर एवं श्वास पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त किया जाता है। इसमें सफल होने पर ज्ञानतन्तु, नाड़ी-जाल एवं मन पर सफलतापूर्वक नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है।

ब्रण्टन—इससे आपको क्या लाभ होता है ?

योगी—शरीर का स्वास्थ्य, इच्छा-शक्ति, दीर्घायु। ये चन्द लाभ हैं। जो योगी इस विद्या में सिद्धि प्राप्त कर लेता है वह शरीर में लोहे की-सी सहन-शक्ति पैदा कर सकता है। वह दर्द से विचलित नहीं होता।...वह नंगे शरीर कठिन-से-कठिन सरदी बर्दाश्त कर सकता है।...मेरे गुरु हिम एवं तुषाराच्छन्न हिमालय की चोटियों पर एक पतला कपड़ा ओढ़े घण्टों बैठे रह सकते हैं, जहाँ पानी तुरन्त जम जाता है; परन्तु उनको किसी कष्ट का अनुभव नहीं होता। योग की यह शक्ति है।

ब्रण्टन—आपने कुछ असाधारण शक्ति प्राप्त की होगी ?

योगी सिर हिलाकर स्वीकृति प्रकट करता है पर चुप रहता है।

ब्रण्टन—क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आप योगी कैसे हुए ?

योगी—"अवश्य। बचपन में मुझे एकान्त अच्छा लगता था। अकेले मैदानों या बाग़ों में घूमा करता था। १२ वर्ष की आयु में कुछ बूढ़े लोगों को योग पर बातचीत करते देख मेरी उत्सुकता बढ़ी। मैंने तमिल में इस विषय की कुछ पुस्तकें एकत्र कीं। उनको पढ़कर मेरी उत्सुकता बहुत बढ़ गई। मेरे मन में घर छोड़कर जाने की इच्छा हुई; पर माता-पिता ने जाने न दिया।

तब मैं चुपचाप आसन-प्राणायाम करने लगा। परन्तु इससे मुझे उलटे हानि हुई। यहाँ तक कि एक दिन ब्रह्मरंध्र के पास की नसें फूट गईं। बड़ा खून निकला और मुझे ऐसा जान पड़ा कि मेरे प्राण निकल रहे हैं। मूर्च्छा-सी आने लगी। उसी अवस्था में मैंने देखा कि एक योगी कह रहे हैं कि तुमने बिना गुरु के इन निषिद्ध आसनों को करके यह हालत कर ली है। अब इससे शिक्षा ग्रहण करो। फिर मेरी हालत सुधरने लगी और कुछ दिनों बाद घाव भर गया।...कुछ वर्षों बाद जब कौटुम्बिक बंधन कुछ ढीले पड़े, मैं गुरु की खोज में निकला। मैंने दस बार प्रयत्न किये, पर कोई सच्चा योगी न मिला। ग्यारहवीं बार मैं सदा के लिए घर छोड़कर यात्रा पर निकला। तंजौर ज़िले में एक दिन गाँव के पास, प्रातःकाल नदी से नहाकर, मैं जा रहा था कि एकान्त में बने हुए एक मन्दिर में मुझे कुछ आदमियों की आहट मिली। दरवाज़े पर जाकर देखा तो एक योगी लंगोटी पहने बीच में बैठे हैं और उनको घेरकर कुछ लोग योग की शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। मैं खड़ा रहा। मुझे ऐसा अनुभव हुआ मानो यह सच्चे योगी हैं। थोड़ी देर बाद योगी ने आँखें उठाकर मेरी ओर देखा और कहा—"मुझे छः महीने पूर्व तुम्हें शिष्य रूप में ग्रहण करने का आदेश किया गया था। अब तुम आये हो।" मैंने गिनकर देखा, ठीक छः महीने पहले मैं घर से गुरु की खोज में निकला था। इस प्रकार मुझे गुरु मिल गये। इसके बाद मैं सदा उनके साथ रहने लगा। गुरु हठयोगी थे। उनकी सहायता से मैं अभ्यास में उन्नति

करने लगा। मुझे प्राण (श्वास) एवं शरीर पर नियंत्रण स्थापित करने का अभ्यास कराया गया। एक दिन गुरु ने मुझे बुलाया और बोले—"संसार से पूर्णतः निवृत्ति का मार्ग अभी तुम्हारे लिए नहीं है। अपने घर जाओ और रहो। तुम्हारा विवाह होगा, एक सन्तान होगी। ३० वर्ष की आयु में तुम्हें स्वतः कुछ लक्षण दिये जायँगे और तब तुम संसार को छोड़कर इस जीवन में प्रवेश कर सकोगे। तब तुम वन में जाकर योगाभ्यास करोगे और अपने लक्ष्य में सफल होगे। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा।" मैंने गुरु की आज्ञा मान ली। मेरा विवाह हुआ और एक सन्तान भी हुई। परन्तु पीछे पत्नी की मृत्यु होगई। उसके कुछ दिनों बाद मैं यहाँ चला आया।"

बात यहीं समाप्त होगई और ब्रण्टन की प्रार्थना पर संध्या समय योगी ने स्वयं ब्रण्टन के निवास-स्थान पर आने की बात स्वीकार कर ली। संध्या समय ब्रण्टन ने योगी को कुछ फलाहार कराया, फिर अपना परिचय दिया। योग के शोध में लगे हुए ब्रण्टन से ब्रह्म बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला—"जहाँ तक मेरी शपथ को देखते हुए गुञ्जाइश है, मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दूँगा।"

ब्रण्टन ने हठयोग के इतिहास एवं स्वभाव के विषय में जानने की जिज्ञासा प्रकट की।

ब्रह्म ने उत्तर दिया—"मैंने शरीर पर नियंत्रण स्थापित करने की जिस योग—विधि का अभ्यास किया है, वह कितनी प्राचीन है, यह कौन कह सकता है ? इस योग—विधि को बहुत कम लोग

जानते हैं। सामान्य लोग इसके विषय में बड़े भ्रमात्मक विचार रखते हैं और सभी तरह की वाहियात बातें इसके नाम पर प्रदर्शित की जाती हैं। आपको ऐसे आदमी मिलेंगे, जो योग के नाम पर लोहे के तीक्ष्ण कांटों के बिस्तर पर दिन-रात पड़े रहते हैं, या एक हाथ सर्वदा ऊपर उठाये रखते हैं। ऐसे आदमी योग के नाम पर कलंक लगाते हैं।"

ब्रण्टन—पर क्या दोष इन आदमियों का है ? यदि सच्चे योगी अपने को बिल्कुल अलग एवं अपनी विधियों को गुप्त रखते हैं तो ग़लत-फ़हमी होना स्वाभाविक है।

सदा जवान रह सकता है !

ब्रह्म—"क्या राजा अपने रत्न-भाण्डार को, जनता के प्रदर्शन के लिए, राज-पथ पर छोड़ देता है ? हमारा योग-विज्ञान मनुष्य की सर्वोत्तम निधियों में से है। फिर क्या योगी इसे बाज़ार में खड़ा होकर सब को बेचता फिरे ? जिसको उसकी भूख हो, उसे खोजना चाहिए। हमारी हठयोग की विधि सब से गोपनीय है; इस में न केवल अभ्यासी के लिए गहरे ख़तरे हैं, वरन् दूसरों के लिए भी हैं। किन्तु कुछ ऐसी प्रारंभिक क्रियाएँ हैं जिनके द्वारा हम योग के नवीन अभ्यासियों की देह और इच्छा-शक्ति को परिष्कृत करते हैं। ये कुछ आसन हैं जो शरीर के विभिन्न अङ्ग-उपांगों को शक्ति प्रदान करते हैं और रोगों से दूर रखते हैं। कुछ आसन ऐसे हैं जो ज्ञानतन्तु-केन्द्रों को नियन्त्रित करते हैं और जिन अङ्गों से हम जैसा काम लेना चाहते हैं वैसा लेने की शक्ति प्रदान करते हैं।

सबसे पहले अत्यन्त शान्त मुद्रा से बैठने का अभ्यास किया जाता है जिससे नाड़ी-जाल एवं ज्ञानतंतुओं को आराम मिलता है। इसके बाद शरीर को फैलाकर पड़ रहने वाले कुछ आसन हैं। तीसरी बात यह है कि हम शरीर के भीतरी भागों को कई प्रकार के अभ्यास से स्वच्छ करते रहते हैं। इसके बाद श्वास-क्रिया का अध्ययन करके श्वास पर नियंत्रण स्थापित करने का अभ्यास किया जाता है।......हमारे यहाँ ऐसे आसन हैं जिनके अभ्यास और प्राणायाम-द्वारा मनुष्य सदा युवा रह सकता है। इनके द्वारा प्राणों की सुषुप्त शक्तियाँ जाग्रत हो जाती हैं। मनुष्य अपने शरीर और मन पर पूर्ण अधिकार रख सकता है। इच्छा-शक्ति अत्यन्त सबल हो जाती है। तुम लोग अपने अङ्गों की ज़ोरदार हरकत के द्वारा पुट्ठों को मज़बूत करते हो। तुम लोग स्फूर्ति-शक्ति को ज़ोरों से व्यय करते हो जिससे शरीर ख़ूब पुट्ठेदार (mascular) और दृढ़ हो। हमारी योग की विधि बिल्कुल भिन्न सिद्धान्तों पर आश्रित है। हम जब एक मुद्रा (Pose) ग्रहण कर लेते हैं तो फिर शरीर को आन्दोलित करने—हिलाने-डुलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अधिक स्फूर्ति पैदा करने की अपेक्षा हम शरीर की सहन-शक्ति को बढ़ाते हैं। हमारा विश्वास है कि यद्यपि पुट्ठों का विकास भी उपयोगी हो सकता है, परन्तु उनके पीछे जो शक्ति होती है वह उनसे कहीं अधिक मूल्यवान और श्रेष्ठ है। इस प्रकार जहाँ तुम्हारे व्यायाम में अत्यन्त तीव्र आन्दोलन है, तहाँ योग-विधि में शरीर को पूर्णतः शान्त रखने का प्रयास है।.....प्राणायाम का विषय

बहुत गोपनीय है। उसके सिद्धान्तों के विषय में चन्द बातें कहता हूँ। एक मनुष्य के शरीर में २१,६०० श्वासघटक हैं जिनका उसे प्रति-दिन उपयोग करना चाहिए। शीघ्र, शब्दमय और ज़ोर से श्वास लेने से ये घटक दुर्बल पड़ जाते हैं। धीमी, गहरी एवं शान्त श्वास-विधि से उनकी शक्ति कम व्यय होती है अतः मनुष्य के जीवन की अवधि बढ़ सकती है। योगी, और लोगों की भाँति, बहुत अधिक श्वास नहीं लेते और न उनको इसकी आवश्यकता पड़ती है। यह श्वास एक सूक्ष्म शक्ति की अभिव्यक्ति है। वस्तुतः सूक्ष्म शक्ति ही शरीर को जीवित रखती है। यह अदृश्य शक्ति शरीर के प्रधान अङ्गों में अन्तर्हित है। जब वह शरीर को छोड़ देती है तो श्वास-क्रिया बन्द हो जाती है, जिसका परिणाम मृत्यु है। श्वास पर नियन्त्रण होने से इस अदृश्य प्रवाह पर भी कुछ नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। यद्यपि हम अपने शरीर पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर सकते हैं—यहाँ तक कि हृदय की गति पर भी क़ाबू पा सकते हैं—पर क्या तुम समझते हो कि जब हमारे प्राचीन ऋषियों ने योग-विद्या की शिक्षा आरंभ की थी, तो केवल शरीर एवं उसकी शक्तियाँ ही उनकी दृष्टि में थीं ?"

हृदय की गति पर अधिकार

ब्रण्टन (साश्चर्य)—"आप हृदयगति को नियंत्रित कर सकते हैं?"

ब्रह्म—(यद्यपि मैं पूर्ण योगी नहीं हूँ परन्तु) मैंने भी अपने हृदय, पेट इत्यादि स्वचालित अङ्गों पर, एक सीमा तक, नियंत्रण स्थापित कर लिया है।

ब्रण्टन—कैसे ?

ब्रह्म—इसके लिए कई प्रकार के आसन, प्रणायाम एवं इच्छा-शक्ति-सम्बन्धी व्यायाम करने पड़ते हैं। ये सब योग की ऊँची श्रेणी की बातें हैं और इतनी कठिन हैं कि बहुत ही थोड़े आदमी इनमें सफलता प्राप्त कर सकते हैं। इन अभ्यासों के द्वारा मैंने उन पुट्ठों ('मसल्स') पर अधिकार स्थापित कर लिया है जो हृदय को संचालित रखते हैं। फिर हृदय के इन पुट्ठों ('मसल्स') की सहायता से अन्य अङ्गों पर भी मैंने अधिकार स्थापित करने में सफलता पाई।

ब्रण्टन—यह तो असाधारण बात है।

ब्रह्म—तुम ऐसा समझते हो? अच्छा, मेरे हृदय पर हाथ रखो। देखो, कुछ देर तक हाथ हटाना नहीं।

इतना कहकर ब्रह्म ने एक विशेष आसन ग्रहण किया और अपनी आँखें बन्द करलीं। कुछ मिनट तक वह बिल्कुल सीधा बैठे रहे। ज़रा भी हरकत नहीं। फिर धीरे-धीरे उनके हृदय की धड़कन क्षीण होने लगी और कुछ देर में एक दम बन्द हो गई। ब्रण्टन आश्चर्य-चकित रह गये। फिर थोड़ी देर बाद धड़कन धीरे-धीरे आरंभ हुई और अपनी स्वाभाविक अवस्था में पहुँच गई।

धमनी पर नियन्त्रण

ब्रह्म ने कहा — मेरे गुरुदेव जो कुछ कर सकते हैं उसकी तुलना में यह कुछ नहीं है। यदि उनकी धमनी काट दो,तो भी वह रक्त-सञ्चार को नियन्त्रित कर सकते हैं—उसे बिल्कुल बन्द कर दे

सकते हैं। मैंने भी अपने रक्त पर कुछ अधिकार स्थापित किया है, पर मैं ऐसा नहीं कर सकता।

ब्रएटन—क्या आप रक्त पर अपने अधिकार की क्रिया मुझे दिखा सकते हैं ?

ब्रह्म ने अपनी कलाई ब्रएटन के हाथ में देदी और नाड़ी पर हाथ रखकर देखने को कहा। दो-तीन मिनट के बाद रक्त की गति कम होने लगी और शीघ्र ही बिल्कुल बन्द हो गई। ४-५ मिनट तक यह दशा रही। फिर धीरे-धीरे गति मालूम पड़ने लगी और कुछ देर बाद सामान्य अवस्था में पहुँच गई।

ब्रएटन—कैसे आश्चर्य की बात है !

ब्रह्म—यह तो कुछ भी नहीं है।

श्वास पर पूर्ण अधिकार

ब्रएटन की प्रार्थना पर ब्रह्म ने एक और सिद्धि दिखाने का वचन दिया और बोले—"इस बार मैं श्वास बिल्कुल बन्द कर दूँगा।"

ब्रएटन—तब तो आपकी मृत्यु ही हो जायगी !

ब्रह्म ने हँसकर कहा—मेरी नाक के नीचे हाथ रखकर देखो।

ब्रएटन ने आज्ञा का पालन किया। ब्रह्म कुछ देर तक अन्दर की हवा बाहर निकालते रहे। जब सब हवा निकल गई तो ब्रह्म ने आँखें बन्द करलीं; उनका शरीर मूर्त्ति की तरह कड़ा होने लगा और वह समाधिस्थ हो गये, जैसे पत्थर का गढ़ा हुआ कोई देवता हो। कहीं श्वास-प्रश्वास का चिन्ह नहीं। ब्रएटन ने उनकी नाक

एवं ओठों की जाँच की; कन्धों एवं हृदय तथा छाती की परीक्षा की, परन्तु कहीं श्वास-क्रिया का कोई प्रमाण नहीं दिखाई दिया। फिर ब्रण्टन ने पालिश की हुई कोई चीज़ नाक एवं ओठ के पास रखी कि श्वास-क्रिया जारी होगी तो उस पर वाष्प—भाफ़—की नमी आ जायगी; पर कुछ नहीं।

ब्रण्टन—मैं इसे समझने में असमर्थ हूँ। आप इसे कैसे कर सकते हैं?

ब्रह्म—इसे बताने की मुझे आज्ञा नहीं है। श्वास का यह नियंत्रण ऊँची श्रेणी के योग का अङ्ग है।......

ब्रण्टन—किन्तु हमें सदा से यह सिखाया गया है कि मनुष्य श्वास ग्रहण किये बिना जी नहीं सकता। क्या यह मूर्खतापूर्ण बात है?

ब्रह्म—मूर्खतापूर्ण तो नहीं, परन्तु यह पूर्ण सत्य भी नहीं है। मैं इच्छा करने पर दो घन्टे तक श्वास-क्रिया बन्द रख सकता हूँ। मैंने अनेक बार ऐसा किया है पर तुम देख ही रहे हो कि मैं जीवित हूँ।

बृण्टन—मैं चक्कर में हूँ। आप इसका रहस्य नहीं बता सकते तो कम-से-कम इसके सिद्धान्त की तो किंचित् व्याख्या कीजिए।

बृह्म—यदि हम ध्यान से देखें तो पशुओं से इस सम्बन्ध में शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। हाथी बन्दर की अपेक्षा बहुत धीरे-धीरे साँस लेता है। किन्तु वह बन्दर की अपेक्षा अधिक दिन तक जीता है। कुछ अजगर कुत्ते की अपेक्षा धीरे-धीरे साँस

लेते हैं, पर अपेक्षाकृत दीर्घजीवी होते हैं। मतलब ऐसे प्राणी हैं जिनसे हम देख सकते हैं कि धीरे-धीरे साँस लेने से आयु को बढ़ाया जा सकता है। यदि तुमने इतनी बात समझली तो आगे की बात आसानी से समझ सकोगे। हिमालय में ऐसे चमगादड़ होते हैं जो जाड़े के दिनों में बिल्कुल सो जाते हैं। वे गुफ़ाओं में हफ़्तों लटके रहते हैं, परन्तु जागने के पहले, निद्रा अवस्था में, एक बार भी साँस नहीं लेते। हिमालय प्रदेश के रीछ भी, कभी-कभी शरद् ऋतु में, लम्बी समाधि लगाते हैं और उनका शरीर बिल्कुल निर्जीव-सा पड़ा रहता है। जब हिमालय में शरद् में खाने को कुछ नहीं मिलता तो अनेक बार साही अपनी माँदों में लम्बी अवधि के लिए सो जाती है और निद्राकाल में बिल्कुल साँस नहीं लेती। यदि ये पशु बिना श्वास के जी सकते हैं, तो फिर मनुष्य वैसा क्यों नहीं कर सकते ?

ब्रण्टन—हम पाश्चात्यों को यह बात समझने में सदा कठिनाई होगी कि जबतक श्वास-क्रिया न होती रहे, किसी शरीर में जीवन कैसे रह सकता है !

ब्रह्म—जीवन का तो कभी अन्त नहीं होता; वह तो जारी ही रहता है। मृत्यु तो शरीर का एक स्वभाव (Habit) मात्र है।

मृत्यु पर विजय

ब्रण्टन—किन्तु इससे निश्चय ही आपका यह तात्पर्य नहीं हो सकता कि मृत्यु पर विजय संभव है ?

ब्रह्म—क्यों नहीं ?···अभी तक तुम्हारा यह विश्वास रहा है कि श्वास को एक दम बन्द कर देने का परिणाम मृत्यु है ?

ब्रएटन—हाँ।

ब्रह्म—तब क्या यह मानना भी विवेक-सम्मत नहीं है कि शरीर के अन्दर श्वास को पूर्णतः रोक रखने से हमारे अन्दर कम से कम तब तक जीवन रह सकता है, जब तक श्वास (शरीर के अन्दर) रुका हुआ है ?

ब्रएटन—तो ?

ब्रह्म—बस, हमारा इतना ही दावा है। हम मानते हैं कि श्वास-क्रिया के नियन्त्रण में जिसको सिद्धि मिल चुकी है और जो इच्छानुसार इस श्वास को शरीर के अन्दर स्थित रख सकता है, वह इसके द्वारा जीवन-प्रवाह को भी ग्रहण किये रह सकता है। तुम समझते हो ?

ब्रएटन—हाँ

ब्रह्म—अब उस सिद्ध योगी की कल्पना करो जो अपने श्वास को न केवल कुछ मिनटों वरन् हफ़्तों, महीनों एवं वर्षों तक अपने अन्दर नियन्त्रित करके रख सकता है। चूँकि तुम मानते हो कि जहाँ श्वास है तहाँ जीवन भी है, तुम सहज ही देख सकते हो कि योग द्वारा किस प्रकार मानव-जीवन की सीमा बढ़ाई जा सकती है·········क्या तुमने उस फ़क़ीर की कथा नहीं सुनी है, जिसे रणजीतसिंह ने लाहौर में एक बक्स में बन्द करके ज़मीन के अन्दर गड़वाया था ? यह सब घटना इस अन्तिम सिख सम्राट

की आँखों के सामने और अँग्रेज़ सेनाध्यक्षों की उपस्थिति में हुई थी। वहाँ ६ हफ़्ते तक सैनिक पहरा रखा गया और इसके बाद जब ज़मीन खोदकर फ़क़ीर को निकाला गया तो वह जीवित और स्वस्थ निकला। इस फ़क़ीर का नाम हरिदास था और उसने श्वास पर अद्भुत नियन्त्रण स्थापित कर लिया था।*

ब्रण्टन—तो क्या मृत्यु पर विजय पाना सम्भव है ?

हज़ारों वर्ष की आयु

ब्रह्म—क्यों नहीं। नीलगिरि की गुफ़ा में हठयोग के एक सिद्ध योगी हैं जो अपने स्थान से कभी बाहर नहीं निकलते। हिमालय में भी एक ऐसे योगी हैं। इनसे तुम भेंट नहीं कर सकते, क्योंकि वे इस संसार से पूर्णतः विरक्त हैं। इतने पर भी हम लोगों के बीच उनकी स्थिति का ज्ञान परम्परा से चला आ रहा है और हमें बताया गया है कि उन्होंने अपनी आयु सैकड़ों वर्ष तक बढ़ाई है।

ब्रण्टन—आप सचमुच इसमें विश्वास रखते हैं ?

ब्रह्म—निस्सन्देह। मेरे सामने स्वयं मेरे गुरुदेव का उदाहरण है।

ब्रण्टन—आपके गुरुदेव कौन हैं ?

---

*भारत-सरकार के काग़ज़ों में यह घटना सुरक्षित है। यह १८३७ ई० में महाराज रणजीतसिंह, सर क्लाड वेड, डा० हानिग बर्गर इत्यादि के सामने हुई थी।

ब्रह्म—अपने दाक्षिणात्य शिष्यों के बीच ये येरम्बु (हेरम्ब) स्वामी या चींटी वाले बाबा के नाम से प्रसिद्ध हैं।

ब्रण्टन—क्या वह पूरे हठयोगी हैं?

ब्रह्म—हाँ।

ब्रण्टन—और आपका विश्वास है कि उनकी आयु·····?

ब्रह्म—मेरा विश्वास है कि उनकी आयु ४०० वर्ष से ऊपर है।···उन्होंने अनेक बार मुझसे मुग़ल सम्राटों के काल की बातें की हैं और उस समय का भी वर्णन किया है जब तुम्हारी अँग्रेज़ ईस्टइण्डिया कम्पनी का पहली बार मद्रास में प्रवेश हुआ था।

ब्रण्टन—किसी मनुष्य के लिए इतने दिनों तक जीवित रहना कैसे संभव है?

ब्रह्म—यह तीन विधियों से संभव हो सकता है। पहली, सब प्रकार के आसन, प्राणायाम तथा कुछ गुप्त व्यायाम का पूर्ण अभ्यास। दूसरी कुछ अत्यन्त दुर्लभ जड़ी-बूटियों का नियमित सेवन है। इन बूटियों का ज्ञान भी इस मार्ग में पूरी तरह पड़ जाने वालों को ही रहता है। ये योगी सदा उन्हें गोपनीय रखते हैं और जब वे शरीर त्याग करना चाहते हैं, तब किसी योग्य एवं विश्वसनीय शिष्य को उसका भेद बता जाते हैं। तीसरी विधि को समझाना बड़ा कठिन है।

ब्रण्टन—क्या आप उसे समझाने की चेष्टा न करेंगे?

ब्रह्म—अच्छा; सुनो। बात यह है कि मनुष्य के मस्तिष्क के अन्दर एक क्षुद्र छिद्र (ब्रह्मरन्ध्र?) है। यही आत्मा का निवास-

स्थान है। इस छिद्र के चारों ओर एक खोल होता है, जिससे इस की रक्षा होती है। रीढ़ के नीचे, त्रिक-स्थान के अत्यन्त निकट, अदृश्य जीवन-प्रवाह रहता है, जिस की पहले भी मैं चर्चा कर चुका हूँ। इस प्रवाह के सतत क्षय से ही शरीर बूढ़ा होता है। इसके नियन्त्रण से शरीर में नवजीवन आजाता है। जब योगी अपने ऊपर पूर्ण विजय प्राप्त कर लेता है तब इस जीवन-प्रवाह पर एक विशेष साधना से अधिकार करता है। यह साधना बहुत ऊँचे योगियों को ही मालूम है। इससे वह जीवन-प्रवाह को रीढ़ के ऊपरी भागों में चढ़ाता है और मस्तिष्क के अन्दर के उस छोटे छिद्र में उसे केन्द्रीभूत करने का प्रयत्न करता है। किन्तु जब-तक उसे कोई सिद्ध गुरु न मिले, जो छिद्र के ऊपर के खोल को खोलने में उसकी सहायता करे, तब-तक वह इस कार्य में सफल नहीं हो सकता। यदि उसे ऐसा सहायक गुरु मिल गया तो जीवन-प्रवाह उस छिद्र में प्रवेश करता है और दीर्घायु के अमृत-रूप में बदल जाता है। यह सरल कार्य नहीं है; क्योंकि अकेले करनेवालों के प्राण का ख़तरा रहता है। किन्तु जो इसमें सफल होजाता है वह जब चाहे तब, इच्छानुसार, अपने शरीर में ऊपर से मृत्यु-जैसी स्थिति उत्पन्न कर सकता है और मृत्यु के आगमन के समय उस पर विजय प्राप्त कर सकता है।......हठ-योग की कई पद्धतियाँ हैं। हमारे शास्त्रों की आज्ञा है कि विवेक-वान साधक हठयोग के साथ राजयोग, अर्थात् मन के नियन्त्रण की योग-विधि, का अभ्यास करता है। हठयोग वस्तुतः राजयोग

की सीढ़ी है। शरीर पर विजय, मन पर विजय पाने की पूर्वावस्था है।

ब्रण्टन—क्या दूसरी विधि पूर्णतः मानसिक है ?

ब्रह्म—हाँ, इसमें मन को प्रकाश के सतत प्रवाह-रूप में अनुभव करने का अभ्यास किया जाता है और जब यह प्रकाश सिद्ध हो जाता है, तो उसे आत्मा की ओर प्रधावित करते हैं।

इसके बाद ब्रह्म ने ब्रन्टन को एक काग़ज़ दिया, जिस पर कई ग्रहों के चित्र थे तथा कुछ मंत्रादि भी लिखे थे। बीच में स्थान ख़ाली था। इसे देखकर ब्रह्म ने कहा—"मैंने कल रात इसे तैयार किया है। जब तुम, स्वदेश में, अपने घर, पहुँच जाओ, तो बीच के ख़ाली स्थान में मेरा एक फ़ोटो चिपका देना। जब तुम मुझ से मिलना या बातचीत करना चाहो, रात को बिस्तर पर जाने के पूर्व ५ मिनट तक इस पर एकाग्र चित्त ध्यान करना। यदि हमारे बीच पाँच हज़ार मील का भी अन्तर होगा, तो भी इस काग़ज़ पर ध्यान केन्द्रित करने से, हमारी आत्माएँ मिलेंगी और इनका मिलन ठीक वैसा ही सच्चा होगा, जैसा हम आज एक जगह बैठकर बात कर रहे हैं।"

ब्रह्म—जो कुछ अदृष्ट में निश्चित है, वह तो होकर ही रहेगा। मैं वसन्त में यहाँ से तंजौर जा रहा हूँ। वहाँ मेरे दो शिष्य हैं। उसके बाद मेरा कार्यक्रम निश्चित नहीं; क्योंकि मैं शीघ्र गुरुदेव का संदेश पाने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। पिछली रात को मेरे गुरुदेव ने मुझसे कहा कि तुम्हारे विदेशी मित्र ज्ञान की खोज में

हैं। अपने पिछले जन्म में वह भी एक योगाभ्यासी थे और हममें से एक थे, यद्यपि उनका योग हमारी प्रणाली का न था। आज वह फिर भारतवर्ष आये हैं; परन्तु जो कुछ पूर्व जन्म में जानते थे, आज भूल गये हैं। जब तक कोई सिद्ध पुरुष उनपर कृपा न करेगा, उनको खोई हुई शक्तियाँ प्राप्त नहीं हो सकतीं। गुरु की आवश्यकता है। उनसे कह देना कि बहुत जल्द उनको गुरु मिलेंगे। और तब अपने आप उनको प्रकाश प्राप्त होगा। यह निश्चित है। उनसे निश्चिन्त रहने को कहो। जबतक ऐसा न होगा, वह हमारा देश छोड़कर किसी तरह न जा सकेंगे। इसे भाग्य की अमिट रेखा समझो।

ब्रण्टन ने आश्चर्य के साथ कहा—आपने तो कहा था कि गुरुदेव नेपाल में हैं ?

ब्रह्म—अब भी वहीं हैं।

ब्रण्टन—तब वह १२०० मील का अन्तर एक रात में कैसे पार कर सकते हैं ?

ब्रह्म—मेरे गुरुदेव सदा मेरे पास हैं, यद्यपि हमारे शरीरों के बीच भारत की विस्तृत भूमि पड़ी हुई है। बिना पत्र या सन्देश-वाहक के उनका सन्देश मुझे मिलता रहता है। उनके विचार आकाश-मार्ग से मेरे पास आते हैं।

ब्रण्टन—टेलीपैथी ?

ब्रह्म—वैसा भी कह सकते हो।

ब्रण्टन पश्चिम की वैज्ञानिक दुनिया में पले हुए प्राणी थे। अच्छी-से-अच्छी आधुनिक शिक्षा उन्हें मिली थी। उनका तार्किक

मस्तिष्क ऐसी बातों को सुनकर चक्कर में आ गया। योग की संभावनाएँ यहाँ तक जा सकती हैं इसका उन्होंने कभी विचार भी नहीं किया था। पर पूर्व के आध्यात्मिक विज्ञान से जिनका कुछ भी परिचय है उनको ये बातें आरंभिक-सी मालूम होंगी। आत्म-तत्व के ऐक्य की पूर्ण अनुभूति कर लेने पर स्वभावतः देश-काल के व्यवधान का लोप हो जाता है।

: २ :

एक चिरमौन योगी

जब श्री ब्रण्टन का ब्रह्म से परिचय हो गया था और वह मद्रास के एक उपनगर में ठहरे हुए थे, तब उनको एक दिन किसी से मालूम हुआ कि पास ही एक योगी रहते हैं, जो कभी किसी से नहीं बोलते। ब्रण्टन समाचार देने वाले साथी को लेकर तुरन्त उस योगी की खोज में रवाना हो गये। इस योगी का स्थान मद्रास के बाहर कुछ ही दूर पर, एकान्त में, था। एक सुनसान अहाते में छोटा बँगला-नुमा मकान बना था। ब्रण्टन के साथी ने बताया कि यहीं वह योगी रहते हैं; पर वह प्रायः समाधिस्थ रहते हैं, इसलिए हम लोग आवाज़ दें या फाटक को खड़खड़ाएँ तो भी वह कुछ न सुनेंगे और ऐसा करना अशिष्टता समझी जायगी।

फाटक पर मज़बूत ताला लगा था। ब्रण्टन इसी चिन्ता में थे कि अहाते के अन्दर कैसे प्रवेश किया जाय। इतने में एक लड़का उधर से निकला; जिससे मालूम हुआ कि योगी का ख़िदमतगार पास ही रहता है और चाबी उसी के पास रहती है। ब्रण्टन और उसके साथी दोनों ख़िदमतगार के पास पहुँचे। उसने

ताला खोलने से साफ़ इन्कार कर दिया और कहा कि योगी किसी से बात नहीं करते और वह दर्शकों के दर्शन की चीज़ नहीं हैं। योगी अधिकांश समय ध्यानावस्थित रहते हैं, इसलिए यदि इस प्रकार लोगों को दर्शन के लिए अन्दर जाने दिया जाय, तो उनके कार्य में बाधा पड़ेगी और वह नाराज़ होंगे।

ब्रण्टन ने उससे बड़ी अनुनय-विनय की, पर वह तैयार न हुआ। तब ब्रण्टन के साथी ने उसे धमकाकर कहा कि देखो, यह साहब हैं और अगर तुम न खोलोगे तो इनको सरकार से कहकर ज़बर्दस्ती अपनी इच्छा पूरी करनी पड़ेगी। इस धमकी का असर हुआ। ब्रण्टन ने उसे बख़्शीश भी दी, तब वह तैयार हो गया। वह एक साधारण वेतनभोगी सेवक था; यदि योगी का कोई शिष्य होता, तो कोई प्रलोभन या धमकी उस पर असर न कर सकती थी।

उस सेवक से मालूम हुआ कि योगी के पास ऐसा कुछ नहीं है जिसके लिए ताले की आवश्यकता पड़े। उनके एकान्त में बाधा न पड़े, इसलिए यह व्यवस्था की गई है। सेवक रोज़ दो बार ताला खोलता है। योगी दिन भर समाधिस्थ रहते हैं। संध्या समय थोड़ा फल और दूध लेते हैं, पर कभी-कभी संध्या को भी समाधिस्थ ही रह जाते हैं और फल, दूध ज्यों का त्यों पड़ा रह जाता है। कभी-कभी संध्या समय अहाते के अन्दर थोड़ा टहलते हैं। बस, यही उनका व्यायाम है।

सेवक ने अहाते के अन्दर बने कमरे का ताला खोला और ब्रण्टन इत्यादि ने कमरे में प्रवेश किया। इस कमरे के बीच में एक फुट ऊँचा सँगमर्मर का चबूतरा था। उसपर योगी ध्यानावस्थित थे।

योगी की तेजस्वी मूर्त्ति देखकर ब्रण्टन बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने स्वयं ही लिखा है:—"His face photographs itself immediately in my memory as the face of a man who smiles in triumph over life, a man who has conquered the frailties which we, feebler mortals........, harbour willingly or un willingly." अर्थात "उनका मुख तुरन्त मेरे स्मृति-पट पर उस व्यक्ति के फ़ोटोग्राफ़ की भाँति उभर आया, जो जीवन पर विजय प्राप्त करके मुस्करा रहा हो—एक मनुष्य जिसने उन सब दुर्बलताओं को जीत लिया है, जिन्हें हम दुर्बल मनुष्य इच्छा या अनिच्छापूर्वक आश्रय देते हैं।" योगी बिल्कुल स्थिर हैं। आँखें खुली हुई हैं और जैसे किसी एक बिन्दु में स्थिर हों। पुतलियों में ज़रा भी हरकत नहीं है। किसी गढ़ी हुई चट्टान की भाँति योगी अचल हैं।

योगी गहरी समाधि में हैं और शरीर ने जैसे अपना सामान्य कार्य करना त्याग दिया है। उनको अपनी भौतिक परिस्थिति का कुछ भी ज्ञान नहीं है। मिनट-पर-मिनट बीत रहे हैं। घण्टों हो जाते हैं और योगी अचल हैं।

ब्रण्टन ने लिखा है:—"What impresses me most is that throughout that time he never blinks his

eyes. I have never before met any human being who could sit down and look steadily ahead for two hours without the flicker of an eye lid. Little by little, I am compelled to conclude that if the recluse's eyes are still open, they are never-the-less quite unseeing. If his mind is awake, it is not to this sublunary world. The bodily faculties seem to have gone to sleep. Occasionally, a tear drop falls from his eyes. It is clear that the fixation of the eyelids prevents them carrying out their usual office on behalf of the tear ducts." अर्थात् "मुझपर सबसे ज्यादा प्रभाव इस बात का पड़ा कि इस सारे समय में एक बार भी योगी की पलकें नहीं गिरीं, न पुतलियों में कोई हरकत पैदा हुई। मैंने अभी तक कोई ऐसा आदमी नहीं देखा, जो इस प्रकार घण्टों तक निश्चल नेत्रों से एक जगह देखता रह सके।......यद्यपि योगी की आँखें खुली हैं पर बाहर के किसी पदार्थ को वे देख नहीं सकतीं।......मन जाग्रत है पर इस विश्व से सर्वथा अलग है। शरीर की बाह्य शक्तियाँ सो गई हैं।" आगे ब्रण्टन जो कुछ लिखते हैं उसका सारांश यह है:—"एक छिपकली दीवार से उतरती है और धीरे-धीरे योगी के पाँव पर से होती हुई निकल जाती है, पर जैसे योगी को उसका कुछ भी अनुभव नहीं। मक्खियाँ क़भी-क़भी उनके मुखपर बैठती

हैं, पर शरीर पर उनकी ग्राह्यता का कोई चिह्न नहीं। जैसे वे किसी मानव-शरीर पर नहीं वरन् ताम्र-मूर्त्ति पर बैठी हों।......मैं श्वास-क्रिया को देख रहा हूँ। बहुत धीरे-धीरे श्वास चल रहा है; इतने धीरे कि बड़ी बारीकी से देखने पर ही इसका ज्ञान होता है। इस शरीर में जीवन का एक मात्र यही चिह्न है।......दो घण्टे बीत जाते हैं पर योगी उसी तरह निश्चल हैं। अन्त में ख़िदमतगार कहता है, अब प्रतीक्षा व्यर्थ है। योगी गहरी समाधि में हैं और समाधि टूटने के लक्षण नहीं हैं। यद्यपि मैं वादा नहीं कर सकता पर, संभव है, दो-एक दिन बाद फिर आने से आपका काम बन जाय।"

जीवन की कुछ बातें

जब योगी समाधि में थे और ब्रण्टन बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे तब उन्होंने योगी का फ़ोटो भी लिया। इतनी प्रतीक्षा के बाद ब्रण्टन उस दिन लौट आये और उन्होंने उस योगी के बारे में अधिक बातें जानने के लिए खोज शुरू की। इस खोज से जो कुछ मालूम हुआ, उसका सारांश यह है कि आठ वर्ष पूर्व उनका वहाँ आगमन हुआ था। वह कौन हैं, कहाँ से आये, इसका कुछ पता नहीं। वर्तमान स्थान के पास एक खुली जगह पर उन्होंने आसन जमाया। वह कुछ बोलते न थे, न किसी की बात का कुछ जवाब देते थे। कभी-कभी वह मधुकरी माँगते थे; जलती हुई धूप और घोर वर्षा के बीच भी आसन मारे वहीं ध्यान मग्न रहते थे। कीड़े-मकोड़े और धूल-धक्कड़ किसी का जैसे उनपर कोई प्रभाव न था। कभी उन्होंने धूप या वर्षा में किसी आश्रय की कामना न

की। केवल एक लंगोट पहने नियमपूर्वक उसी स्थान पर ध्यान-मग्न रहते। एक दिन कुछ शरारती युवकों ने उनको देखा और तङ्ग करना शुरू किया। उसके बाद तो वे प्रति दिन वहाँ आते और ऊपर धूल फेंकते, उनको ढेले फेंककर मारते और तरह-तरह की गालियाँ देते। पर इन सब के बीच भी योगी उसी तरह निर्द्वन्द्व बैठे रहते। यद्यपि वह इतने बलवान थे कि इन सब को पीटने के लिए अकेले ही काफ़ी थे, पर कभी उन्होंने एक शब्द भी न कहा और अपने मौन व्रत का कभी खण्डन न होने दिया। एक दिन एक धार्मिक व्यक्ति उधर से गुज़रा और गुंडों को ऊधम करते और महात्मा को सताते देख उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने मद्रास आकर पुलिस में रिपोर्ट की और सहायता माँगी। पुलिस की मदद से गुंडों का उत्पात बन्द हो गया। इस घटना के बाद एक पुलिस अफ़सर ने योगी के बारे में जाँच शुरू की, पर उसे कुछ पता न चला। तब उसने योगी से ही प्रश्न किया। बड़ी हिच-किचाहट के बाद योगी ने स्लेट पर इतना लिखाः—

"मैं मारकयार का शिष्य हूँ। मेरे गुरु ने मुझे आज्ञा दी कि मैं उत्तर के मैदानों को पार कर मद्रास जाऊँ। उन्होंने इस ज़मीन का वर्णन किया और बताया कि मैं उसे कैसे पहचान सकूँगा। उन्होंने इसी जगह रहकर मुझे तबतक योगाभ्यास करने की आज्ञा की है, जबतक मैं उसमें पूर्ण न हो जाऊँ। मैंने संसार का त्याग किया है और एकान्त चाहता हूँ। मेरी मद्रास अथवा और किसी स्थान या व्यक्ति के मामले में कोई दिलचस्पी नहीं है।"

इस घटना के कारण मद्रास के एक धनिक का ध्यान योगी की ओर आकर्षित हुआ। उन्होंने योगी से मद्रास में चलकर रहने का अनुरोध किया, पर योगी किसी प्रकार इस स्थान को छोड़ कर जाने को तैयार न हुए। तब यह छोटा-सा स्थान उसने बनवा दिया, और एक ख़िदमतगार रख दिया।

❀ ❀ ❀ ❀

दो-तीन दिन बाद श्री ब्रण्टन, अपने साथी और योगी ब्रह्म-सुगन्ध (जिनका ज़िक्र पहले आचुका है) के साथ, पुनः उक्त स्थान पर गये। यहाँ गड़वाल की रानी के एक भाई भी मिले, जो मोटर में आये थे और योगी से मिलने की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनसे मालूम हुआ कि राज-महल में एक महिला का बच्चा असाध्य रोग से पीड़ित था। उसने योगी के विषय में सुना और मद्रास आई। बच्चे को योगी की आशीष मिली; वह उसी दिन से अच्छा होने लगा और कुछ दिनों में बिल्कुल ठीक हो गया। तब से हम लोग जब कभी मद्रास आते हैं, योगी का दर्शन अवश्य करते हैं।

पहले अपने को समझो

सब लोग चुपचाप कमरे के अन्दर जाकर बैठ गये। योगी पहले की भाँति ही समाधिस्थ हैं। लगभग डेढ़ घंटे के बाद योगी की समाधि टूटी। उन्होंने एक-एक करके सबकी ओर देखा। ब्रण्टन ने पेंसिल और काग़ज़ का पैड उनके सामने रख दिया। योगी पहले तो हिचकिचाये, किन्तु बाद में उन्होंने तमिल में

लिखा—"उस दिन यहाँ कौन आया था और किसने फ़ोटो लेने का यत्न किया था ?"

ब्रण्टन ने अपना नाम लिया। योगी ने फिर लिखा—"आगे ऐसा कभी न करना। जब तुम किसी समाधिस्थ योगी के पास जाओ, तो ऐसे कार्यों से उसके ध्यान में बाधा न डालना। और समाधि के समय योगियों के पास जाना भी न चाहिए। ऐसा करना योगियों के कार्य में बाधक हो सकता है और वे क्रोध में शाप दे सकते हैं।"

ब्रण्टन ने क्षमा माँगी और कहा कि भारत में अब भी कई सिद्ध योगी हैं। उनकी खोज में मैं आया हूँ। क्या आप मुझे इस विषय में कुछ ज्ञान दे सकेंगे ?

योगी ने कुछ देर बाद लिखा—"इसमें समझने की बात ही क्या है ?"

ब्रण्टन—संसार तो समस्याओं से पूर्ण है।

योगी—जब तुम स्वयं अपने को भी नहीं समझते हो, तब संसार को समझने की आशा कैसे कर सकते हो ?

योगी ने ब्रण्टन पर एक हृदय-बेधी दृष्टि डाली। ब्रण्टन को ऐसा अनुभव हुआ, मानो इस स्थिर दृष्टि के पीछे कोई गंभीर ज्ञान है, कोई रहस्य-कोष है, जिसकी योगी सतत जागरूक रहकर रक्षा कर रहा है।

ब्रण्टन—तब भी मैं बहुत भ्रमित हूँ।

योगी—तब तुम इस मधुमक्षिका की भाँति क्यों फिर रहे हो

जो ज्ञान के मधु की बूँदें ही पा सकती है, जब विशुद्ध मधु का अक्षय कोष तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।

ब्रएटन—पर मैं उसे कैसे पा सकता हूँ ?

योगी—अपने को देखो; अपनी आत्मा का शोध करो। तब तुम्हें सत्य प्राप्त होगा क्योंकि वह आत्मा के अन्दर ही निहित है।

ब्रएटन—किन्तु मुझे तो केवल अज्ञान का छूछापन अनुभव होता है।

योगी—अज्ञान तो केवल तुम्हारी कल्पना-मात्र है। यह तुम्हारे ही विचार से उत्पन्न होता है। तुमने अपने वर्तमान अज्ञान के बीच अपनी स्थिति मान ली है; अब तुम ज्ञान के प्रकाश में अपने को अनुभव करो। यही आत्म-ज्ञान है। विचार बैलगाड़ी के समान मनुष्य को पहाड़ की सुरंग के अंधकार में ले जाते हैं। उन्हें पीछे लौटाओ और तुम फिर प्रकाश के जगत् में पहुँच जाओगे।...... विचार का यह प्रत्यावर्तन ही सर्वोच्च योग है।

ब्रएटन—प्रभु, संसार को सहायता की ज़रूरत है। क्या आप-जैसे ज्ञानियों का संसार से अलग हो जाना उचित है ?

योगी—वत्स, जब तुम्हें अपना ही ज्ञान नहीं है, तब मुझे समझने की आशा तुम कैसे कर सकते हो ? ऐसी अवस्था में आत्मा के विषय में चर्चा करना व्यर्थ है। योगाभ्यास द्वारा अपनी अन्तरात्मा में प्रवेश करने की चेष्टा करो। इस मार्ग में तुम्हें गहरा परिश्रम करना पड़ेगा। तब तुम्हारी समस्याएँ अपने आप सुलझ जायँगी।

ब्रण्टन—संसार को आज उससे अधिक गहरे प्रकाश (ज्ञान) की आवश्यकता है जितना उसके पास है। मैं उसे खोजना और उसका लाभ औरों को देना चाहता हूँ। कृपया बताइए, मुझे क्या करना चाहिए ?

योगी—जब तुम सत्य को जान लोगे, तब तुम्हें यह स्वयं मालूम हो जायगा कि संसार की सेवा के लिए तुम्हें क्या करना चाहिए और तब तुम्हें उस सेवा की शक्ति भी प्राप्त होगी। यदि किसी कुसुम में मकरन्द होता है, तो मधुमक्षिकाएँ स्वयं उसे खोज लेती हैं। यदि किसी व्यक्ति में आध्यात्मिक ज्ञान और शक्ति है, तो उसे लोगों की तलाश करने की आवश्यकता नहीं; लोग स्वयं उसके पास पहुँच जायँगे। अन्तरात्मा को विकसित और सुसंस्कृत करो—तबतक, जब तक तुम्हें उसका पूर्ण ज्ञान न हो जाय। अन्य किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं है।

इसके बाद योगी ने भेंट को समाप्त करने की इच्छा प्रकट की। ब्रण्टन ने अन्तिम संदेश माँगा।

योगी ने लिखा—"तुम्हारे आगमन से मुझे प्रसन्नता हुई है। इसे मेरे आशीर्वाद-रूप में ग्रहण करो।"

योगी ने पैड ब्रण्टन की ओर बढ़ा दिया। ब्रण्टन ने उसे पूरा पढ़ा भी न था कि उसे ऐसा ज्ञात हुआ कि कोई विचित्र शक्ति उसके शरीर में प्रवेश कर रही है और रीढ़ की हड्डी के मार्ग से फैल रही है। उसने गले को कड़ा कर दिया है। और सिर को उठा दिया है। प्रबल इच्छा-शक्ति उत्पन्न हो रही है और ब्रण्टन

को ऐसा अनुभव हो रहा है कि कोई सुप्त शक्ति एकाएक जाग्रत हो उठी है और मेरे शरीर द्वारा इन श्रेष्ठ आदर्शों को पूरा कराना चाहती है। जैसे योगी ने कोई विद्युत्प्रवाह मेरे अन्दर 'इंजेक्ट'-प्रविष्ट—कर दिया हो।

बाहर आने पर ब्रह्म ने बताया कि यह व्यक्ति एक श्रेष्ठ योगी है। यद्यपि उसमें अनेक यौगिक सिद्धियाँ एवं शक्तियाँ हैं, परन्तु जान पड़ता है कि अब वह उनका त्याग कर आगे बढ़ गया है और विशुद्ध आध्यात्मिक पूर्णता के शोध में है।

: ३ :

अरुणाचल के महर्षि

ब्रण्टन जिस समय मुमुक्षु की भाँति, शान्ति की खोज में, भारत की यात्रा कर रहे थे और अनेक योगियों से मिलने पर भी उन्हें आन्तरिक शान्ति न प्राप्त हुई थी, उसी समय उन्हें एक व्यक्ति से पता चला कि दक्षिण में महर्षि नाम के एक योगी हैं, जो जीवन्मुक्त अवस्था में हैं। कुम्भकोनम के जगद्गुरु श्री शंकराचार्य ने (जो स्वयं एक श्रेष्ठ आध्यात्मिक साधक एवं योगी हैं) भी श्री ब्रण्टन के प्रश्न के उत्तर में कहा कि मैं भारत के केवल दो सिद्ध योगियों को जानता हूँ, जो तुम्हें इच्छित शान्ति प्रदान कर सकते हैं। इनमें एक काशी में रहते हैं; किन्तु बहुत ही थोड़े आदमियों को उनका दर्शन सुलभ है और अभी तक एक भी यूरोपियन उनके एकान्त में प्रवेश नहीं कर सका है। मैं तुम्हें उनके पास भेज सकता हूँ, परन्तु मुझे भय है कि वह युरोपियन होने के कारण तुमसे मिलने से इन्कार न कर दें।

ब्रण्टन—और दूसरे ?

शंकर—दूसरे ठेठ दक्षिण में रहते हैं। इस स्थान का नाम अरुणाचल है और यह उत्तर अरकाट में है। उनसे मिले बिना तुम दक्षिण भारत को न छोड़ना। उनके पास तुमको निश्चय शांति प्राप्त होगी।

इस सूचना के अनुसार महर्षि के एक शिष्य (जिनसे ब्रण्टन का पहले परिचय हो चुका था और जिन्होंने पहले ब्रण्टन से महर्षि के पास जाने का अनुरोध किया था) के साथ ब्रण्टन अरुणाचल पहुँचे। इस पहाड़ी पर एकान्त में महर्षि का आश्रम है। एक समतल प्रांगण में, बाईं ओर फूस के छाये हुए दो छोटे मकान बने हैं और उन्हीं के पास एक लम्बी पक्की इमारत है, जिसके सामने एक छोटा बरामदा है। इस स्थान के चारों ओर दूर तक वनस्थली है, जिसकी प्राकृतिक शोभा को देखकर मन में अनेक दिव्य भाव उत्पन्न होते हैं।

प्रथम दर्शन

ब्रण्टन ने अपने पथ-प्रदर्शक के साथ उस हाल में प्रवेश किया जहाँ महर्षि रहते थे। हाल में प्रवेश करके देखा कि अनेक शिष्य अर्द्धगोलाकार बैठे हुए हैं और थोड़ी दूर पर एक तख़्त पर महर्षि हैं। महर्षि का तेज एवं चेहरे तथा मस्तक की गठन देखकर ब्रण्टन बड़े प्रभावित हुए। वह अपने साथ कुछ फल लाये थे; उन्हें चरणों के पास रख दिया और थोड़ी दूर पर चुपचाप बैठ गये। महर्षि की आँखें खुली हुई हैं और जिस मार्ग से ब्रण्टन इत्यादि आये थे, उधर ही देखती हैं। पर जैसे देखकर भी देख

नहीं रही हैं—जैसे वे बहुत दूर किसी अकल्पनीय लोक में पहुँच गई हैं। महर्षि बिल्कुल स्थिर हैं—मूर्ति की भांति। हमारे आने की जैसे उन पर छाया ही नहीं पड़ी है। उनका ज्ञान जैसे परिस्थिति एवं दृश्य जगत् को भेदकर कहीं दूर जा पहुँचा है। ठीक वही दृश्य है, जो मद्रास के चिरमौन संन्यासी के यहाँ देख आये हैं।

ब्रंटन लिखते हैं:—"मिनट पर मिनट बीत रहे हैं। आधा घंटा हुआ। फिर दूसरा आधा घंटा भी बीत गया। पर कोई हिलता-डुलता नहीं है; सब चुप हैं। इस वातावरण का प्रभाव मुझ पर पड़ रहा है। मुझ में एक प्रकार की एकाग्रता आरही है। मैं पास के सब लोगों को भूल रहा हूँ। मेरा ध्यान केवल सामने बैठे हुए ध्यानस्थ महर्षि पर है।···इस व्यक्ति में कोई ऐसी वस्तु है, जिसने मेरे ध्यान को अपने साथ उसी तरह बाँध लिया है, जैसे चुम्बक लोहे को खींच लेता है। मैं अपनी दृष्टि वहाँ से हटाने में असमर्थ हूँ। यह आकर्षण मुझे आत्मसात् कर रहा है और मेरे प्रारंभिक आश्चर्य, मेरी उपेक्षाजन्य झुँझलाहट का धीरे-धीरे लोप होता जा रहा है।·····इस असाधारण दृश्य के दूसरे घंटे में मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मेरे मन में एक शान्त और प्रतिरोधहीन परिवर्तन हो रहा है। मैंने मार्ग में बड़ी निश्चिन्तता के साथ जो प्रश्न, पूछने के लिए, तैयार किए थे, एक-एक करके सब हटते जा रहे हैं। अब उनके पूछने की मुझे कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती है। आज तक जिन समस्याओं

और उलझनों ने मुझे चिन्तित रखा है, उनका जैसे अन्त हो रहा है। अब जैसे मुझे इतनी ही अनुभूति हो रही है कि मेरे समीप शान्ति की एक स्थिर नदी बह रही है; मेरे अन्तःकरण में महान् शान्ति का प्रवेश हो रहा है और मेरे चिन्ताग्रस्त एवं विचार-त्रस्त मस्तिष्क को शान्ति मिल रही है। ...जिन प्रश्नों को मैं बार-बार अपने से पूछता रहा हूँ, वे आज कितने नगण्य प्रतीत हो रहे हैं। पिछले वर्षों के दृश्य कितने धुँधले हो गये हैं। आकस्मिक स्पष्टता के साथ मैं देख रहा हूँ कि बुद्धि स्वयं ही समस्याएँ उत्पन्न करती है और फिर उन्हें हल करने में अपने को दुखी और परेशान करती है। जिस व्यक्ति ने आजतक बुद्धि को इतना अधिक महत्व दिया है, उसके दिमाग़ में ऐसी बातों का आना निश्चय ही आश्चर्यजनक है।

"मैं शान्ति एवं विश्राम-बोध की प्रति क्षण गहरी हो रही अनुभूति में अपने को सौंप रहा हूँ। दो घंटे बीत गये। पर अब समय की गति मेरे मन में किसी प्रकार का असन्तोष नहीं उत्पन्न कर पाती है; क्योंकि मैं अनुभव करता हूँ कि मन-कृत समस्याओं के बन्धन स्वयं टूटते जा रहे है। धीरे-धीरे मेरी चेतना में एक नया प्रश्न उदय होता है—'जैसे पुष्प-पराग से सुगन्ध उठती है, वैसे ही क्या इस व्यक्ति, महर्षि, से आध्यात्मिक शान्ति की सुगंध निकलकर फैल रही है?'........मुझे ऐसा जान पड़ता है कि जिस निस्तब्धता ने मेरे अन्तःकरण की तूफ़ानी अशान्ति एवं विक्षोभ को इस प्रकार पराजित कर दिया है, वह आत्मा की रेडियो-

प्रवृत्ति, किसी अदृश्य विचार-प्रवाह के द्वारा इसी महापुरुष से निकल रही है।"

इसी समय साथी और पथ-प्रदर्शक ब्रण्टन के कन्धे पर हाथ रखता है और कान में कहता है—"तुम महर्षि से प्रश्न पूछना चाहते थे न ?" कदाचित उसने सोचा, इतनी देर तक प्रतीक्षा करना एक यूरोपियन के लिए संभव न हो और वह खीझ रहा हो। पर यहाँ तो इतनी देर में एक महान् परिवर्तन हो चुका था। ब्रण्टन ने लिखा है—"आह, मेरे अधीर मित्र ! सच है कि मैं तुम्हारे गुरुदेव से प्रश्न पूछने आया था, पर अब ?......अब जब सम्पूर्ण विश्व के और अपने प्रति शान्ति का अनुभव कर रहा हूँ, मैं प्रश्नों से अपने मस्तिक को क्यों कष्ट दूँ ? मुझे अनुभव हो रहा है कि मैंने अपनी आत्मा का जलयान खोल दिया है; एक अद्भुत सागर तिरने को फैला हुआ है और जब मैं इस महान् साहस के कार्य का आरम्भ करने जारहा हूँ, तब तुम मुझे उसी शोर-गुल की दुनिया की ओर खींचना चाहते हो ?"

"पर जैसे इस प्रश्न ने मेरी शान्ति की समाधि तोड़ दी हो। मैंने देखा, लोग उठ रहे हैं। महर्षि की पुतलियाँ चल रही हैं। फिर सिर एक ओर घूमता है और आँखें मेरी आँखों से मिलती हैं। मेरा साथी फिर पूछता है कि क्या आपको प्रश्न पूछने हैं। पर महर्षि की आँखें मानो मुझसे पूछ रही हैं—"अगाध शान्ति का अनुभव कर लेने के बाद भी क्या संभव है कि तुम्हारा मन संदेह और शङ्का से जीर्ण हो रहा हो ?"

ब्रण्टन ने साथी से कहा—"नहीं।" और सबके साथ वहाँ से उठ गये।

प्रथम भेंट

दोपहर के भोजन के बाद जब सब लोग इधर-उधर आराम करने चले गये, सुअवसर देखकर ब्रण्टन ने उस हाल में प्रवेश किया। महर्षि तख्त पर एक बड़े तकिये के सहारे बैठे हुए थे और उनके हाथ में एक हस्तलिपि थी। बहुत धीरे-धीरे कुछ लिख रहे थे। ब्रंटन बैठ गये। कुछ देर बाद महर्षि ने पुस्तक एक ओर रखदी और एक शिष्य को बुलाया। उससे तमिल में कुछ कहा। उसने ब्रण्टन से कहा—"गुरुदेव को दुःख है कि हमारा भोजन तुमको रुचिकर नहीं हुआ। हम लोग बहुत सादा भोजन करते हैं और युरोपियनों को खिलाने का हमें कभी अवसर नहीं मिला।" ब्रण्टन ने धन्यवाद किया और कहा—"भगवन्, भोजन की बात मेरे लिए विशेष महत्व की नहीं है। मैं यहाँ सत्य की खोज में आया हूँ।"

महर्षि—उद्देश्य शुभ है।

ब्रण्टन—मैंने अपने पाश्चात्य तत्त्वज्ञान और विज्ञान का अध्ययन किया है; अपने जन-संकुल नगरों के निवासियों के बीच रहा और काम किया है। मैंने उनके सुख का स्वाद लिया है और उनकी आकांक्षाओं में फँसकर रहा हूँ। किन्तु मैंने एकान्त स्थानों का भी पर्यटन किया है और गंभीर विचारों के साथ उनमें घूमता रहा हूँ। मैंने पश्चिम के ज्ञानी पुरुषों का सत्संग किया है; उनसे प्रश्न

किये हैं। अब मैं पूर्व की ओर आया हूँ। मैं प्रकाश के शोध में हूँ।

महर्षि ने सिर हिलाकर सहमति प्रकट की।

ब्रण्टन—मैंने अनेक सम्मतियाँ सुनी हैं; अनेक प्रकार के सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त की है। एक-एक विश्वास के बौद्धिक मेरे चारों ओर एक-पर-एक लदे हुए हैं। मैं उनसे थक गया हूँ और जो कुछ व्यक्तिगत अनुभव से सिद्ध नहीं हो सकता, उसके विषय में मेरा मन अश्रद्धा और संदेह से भर गया है। कृपया मुझे क्षमा कीजिए, पर मुझे कह देना चाहिए कि मैं धार्मिक नहीं हूँ। क्या मनुष्य की भौतिक सत्ता के परे भी कुछ है? यदि है, तो मैं उसे, अपने लिए, किस प्रकार सिद्ध कर सकता हूँ?

महर्षि बोलते नहीं; कुछ सोच रहे हैं और ब्रण्टन कहते जाते हैं:—"हमारे पश्चिम के विज्ञानवेत्ता अपनी चतुराई के लिए आदृत हैं। फिर भी जीवन के पीछे जो सत्य अन्तर्हित है, उसपर प्रकाश डालने के सम्बन्ध में अपनी अक्षमता वे स्वीकार करते हैं। मैंने सुना है कि इस देश में ऐसे कुछ लोग हैं जिनसे वह प्रकाश प्राप्त हो सकता है जिसे देने में हमारे पाश्चात्य ज्ञानी असमर्थ हैं। क्या यह ठीक है? क्या आप उस ज्ञान की प्राप्ति में मेरी सहायता कर सकते हैं? या यह सम्पूर्ण शोध मिथ्या है?"

'मैं' क्या है?

महर्षि लगभग दस मिनट तक ब्रंटन की ओर देखते रहते हैं और फिर पूछते हैं:—"तुमने कहा 'मैं जानना चाहता हूँ।' बताओ, यह 'मैं' क्या है?"

ब्रण्टन घबराये, पर कुछ सोचने के बाद अपनी ओर उंगली से संकेत किया और अपना नाम लिया।

महर्षि—क्या तुम उसे जानते हो ?

ब्रण्टन—सम्पूर्ण जीवन-भर जानता रहा हूँ।

महर्षि—किन्तु यह तो केवल तुम्हारा शरीर है। मैं पूछता हूँ—'तुम कौन हो ?'

ब्रण्टन चुप। चकराया हुआ। महर्षि कहते हैं—"पहले इस 'मैं' को जानो। फिर तुम सत्य को जान सकोगे।...... तुमको केवल एक ही काम करना है। तुम अपने भीतर देखो। इसे ठीक तरह करो और तुम्हें अपनी सारी उलझनों का जवाब मिल जायगा।......आत्मा के विषय पर गम्भीर विचार और सतत ध्यान करो, प्रकाश मिलेगा।"

ब्रण्टन—मैंने कितनी ही बार ध्यान किया है, पर कुछ उन्नति हुई मालूम नहीं होती।

महर्षि—कैसे जानते हो कि कोई उन्नति नहीं हुई है। आध्यात्मिक जगत् में अपनी उन्नति का ठीक अन्दाज़ करना बहुत कठिन है।

ब्रण्टन—क्या किसी गुरु की सहायता अपेक्षित है ?

महर्षि—हो सकती है।

ब्रंटन—गुरु की सहायता से ज्ञान प्राप्त करने में कितना समय लगेगा ?

महर्षि—यह तो मुमुक्षु के मानसिक विकास पर निर्भर है। बारूद तुरन्त आग पकड़ लेती है, परन्तु कोयला जलाने में देर लगती है।

ब्रण्टन—आज हम दुनिया की बड़ी आशंकापूर्ण स्थिति में रह रहे हैं। क्या महर्षि संसार के भविष्य के विषय में अपनी राय देंगे?

महर्षि—तुम भविष्य के विषय में क्यों चिन्तित हो, जब तुम भलीभाँति वर्तमान के विषय में भी जानते नहीं। वर्तमान को सँभालो; भविष्य अपनी खबर आप लेगा......। जैसे तुम हो, वैसी ही दुनिया है। अपने को जाने (आत्म-ज्ञान) बिना संसार को जानने की चेष्टा व्यर्थ है।......लोग अपनी शक्ति इन प्रश्नों में क्षय करते हैं। पहले तुम्हारे पीछे जो सत्य है उसे जानो, तब तुम इस दुनिया के भीतर के सत्य को समझने में अधिक समर्थ हो सकोगे, जिसके तुम एक अंश हो।

अन्तःदर्शन

दूसरे दिन। महर्षि उसी तरह हाल में समाधिस्थ-से बैठे हैं। वैसे ही अगुरु की सुगन्ध से वातावरण शुद्ध है। लोग चुपचाप बैठे हैं। ब्रण्टन भी चुपचाप जाते हैं और बैठ जाते हैं। वह अपनी दृष्टि महर्षि में केन्द्रित करते हैं, और कुछ देर बाद अपनी आँखें बन्द करने की आत्म-स्फूर्ति होती है। धीरे-धीरे वह सुषुप्त-से हो जाते हैं। चारों ओर की अद्भुत शान्ति में उनका बहिर्ज्ञान लोप हो जाता है और वह एक स्वप्न देखते हैं:—

वह पाँच वर्ष के बालक हैं और अरुणाचल की एक पगडंडी पर खड़े हैं। वह महर्षि का हाथ पकड़े हुए हैं। महर्षि बहुत लम्बे लगते हैं, जैसे विराट से हो रहे हों। अँधेरी रात है। हाथ से हाथ नहीं सूझता है पर महर्षि उस दुर्गम मार्ग से उन्हें ले जा रहे हैं। कुछ देर बाद तारों का कुछ प्रकाश पत्तों से छनकर नीचे आता है। ब्रण्टन देखते हैं कि चारों ओर खाई और सोते हैं। मार्ग दुर्गम है; पर महर्षि बड़ी सावधानी से उन्हें लिये जा रहे हैं। मार्ग का अति-क्रमण धीरे-धीरे हो रहा है। चट्टानों के नीचे, गुफ़ाओं और कुंजों के बीच, तपस्वियों और योगियों के छोटे-छोटे आश्रम हैं। ज्यों-ज्यों ये आगे जाते हैं, वे लोग इनकी अभ्यर्थना करते हैं; पर महर्षि रुकते नहीं, ब्रण्टन हाथ पकड़े चले जा रहे हैं। अन्त में चोटी पर पहुँचते हैं। महर्षि ब्रण्टन की ओर देखते हैं। ब्रण्टन के अन्दर एक असाधारण परिवर्तन होने लगता है। जिन इच्छाओं के कारण वह भ्रमित रहे हैं, उनका नाश हो रहा है। द्वेष ग़लत-फ़हमी, वासनाएँ, स्वार्थ एवं दुर्व्यवहारों का अन्त हो गया है। अवर्णनीय शान्ति में वह ओत-प्रोत हो रहे हैं और जैसे जीवन से पूर्ण सन्तोष है। अब उनको कोई इच्छा और आकांक्षा नहीं रह गई है।

एकाएक महर्षि ब्रण्टन को पहाड़ी के नीचे देखने को कहते हैं। ब्रण्टन वैसा करते हैं और यह देखकर चकित हो जाते हैं कि नीचे पश्चिमी गोलार्द्ध दूर तक फैला हुआ है और उसमें लाखों करोड़ों आदमी भरे हुए हैं। महर्षि बोलते हैं:—"जब तुम वहाँ लौटकर

जाओगे, तो वहाँ भी वही शान्ति अनुभव करोगे जो इस समय कर रहे हो। पर इसका मूल्य तुमको यह चुकाना पड़ेगा कि तुम अब इस विचार का सर्वथा त्याग कर दो कि तुम यह शरीर अथवा यह मस्तिष्क हो। जब यह शान्ति तुममें प्रवाहित होगी, तो तुम्हें अपने को भूल जाना पड़ेगा क्योंकि तुम्हारा जीवन 'उसकी' ओर लौट रहा होगा।"

ब्रण्टन एकाएक जगकर देखते हैं, देर हो गई है। पर जगकर भी उनकी वह शान्ति, संसार और अपने साथ परिपूर्ण शांति एवं सन्तोष का सम्बन्ध बना है। जैसे वह जीवन की लालसा और राग-द्वेष को पार कर ऊपर उठ गये हैं। इसी समय महर्षि की आँखें उनकी आँखों से मिलती हैं। महर्षि उनकी ओर दृष्टि गड़ाये देख रहे हैं।

हरएक आदमी उठ रहा है। सोने का समय होगया। ब्रण्टन भी उठते हैं। उस रात रह-रहकर उनको वही स्वप्न याद आता है। वह लिखते हैं:—"I feel that in the Maharishee I have met the most mysterious personality whom life has yet brought within the orbit of my experience" अर्थात् "मैं अनुभव करता हूँ कि महर्षि के रूप में अब तक के सबसे रहस्यमय व्यक्तित्व से मेरी मुलाक़ात हुई है।"

: ४ :

अरुणाचल के महर्षि की साधना

पहले मैं लिख चुका हूँ कि ब्रण्टन को अरुणाचल में रहकर यह अनुभव हुआ कि महर्षि एक अत्यन्त रहस्यमय व्यक्ति हैं। जो शान्ति उन्हें महर्षि के पास मिली, वह अन्यत्र कहीं न मिली और आज अनेक वर्षों के बाद उनका वह विश्वास प्रगाढ़ निष्ठा का रूप धारण कर चुका है। उन्होंने महर्षि के संदेश पर विस्तार से एक पुस्तक ही लिख डाली है परन्तु यहाँ तो संक्षेप में हम उनके अनुभव का सार देंगे।

ब्रण्टन जब महर्षि के पास आये थे, तब केवल तीन दिन ही ठहरने का विचार था; परन्तु धीरे-धीरे दिन बीतते गये। महर्षि के सामने जाते ही उनकी शंकाएँ, उनके प्रश्न जैसे अगाध शान्ति के सागर में विलीन हो जाते थे। दो हफ्ते हो गये; परन्तु महर्षि से कोई विशेष बात-चीत न हो सकी। इधर अब इनका अधिक ठहरना संभव न था। इसलिए ब्रण्टन ने निश्चय किया कि जाने के पूर्व किसी प्रकार महर्षि से कुछ आवश्यक बात कर लेनी चाहिए। इतने दिनों तक रहकर उन्होंने बार-बार महर्षि को देखा। जब देखते, तब उन्हें यही अनुभव होता कि वह बड़ी ऊँचाई पर

बैठे हुए जीवन का तमाशा, उससे अनासक्त होकर, देख रहे हैं। उन्होंने लिखा है:—"इस आदमी में कोई ऐसी रहस्यमय चीज़ है जो उसे उन सब लोगों से अलग करती है, जिनसे मैं अभी तक मिला हूँ। मुझे तो कुछ ऐसा अनुभव होता है कि वह मनुष्य जाति के उतने नहीं हैं, जितने प्रकृति के हैं...।" उन्होंने अपने अनुभव लिखते हुए यह भी कहा है कि जिस प्रकार अरुणाचल का शिखर सम्पूर्ण जङ्गल के ऊपर आकाश में उठा हुआ है, उसी प्रकार मनुष्यों के इस जङ्गल में यह असाधारण व्यक्ति महत्ता के साथ सिर ऊँचा उठाये हुए है। इस व्यक्ति ने सम्पूर्ण समस्याओं से अपने को मुक्त कर लिया है और उसे कोई दुःख स्पर्श नहीं कर सकता।

आत्मा का स्वरूप

जाने के पूर्व प्रयत्नपूर्वक ब्रण्टन ने बातचीत करने की आज्ञा प्राप्त की। वह महर्षि के पास गये और प्रश्न किया:—"योगियों का कथन है कि सत्य की प्राप्ति के लिए इस संसार का त्याग करके एकान्त वन या पर्वत की शरण लेनी चाहिए। पश्चिम में ये बातें असंभव हैं। हमारा जीवन भिन्न प्रकार का है। क्या आप योगियों से सहमत हैं?"

महर्षि—कर्ममय जीवन का त्याग करने की आवश्यकता नहीं। यदि तुम प्रति दिन घण्टा दो घण्टा ध्यान करोगे, तो अपने कर्त्तव्यों का ठीक रीति से पालन कर सकोगे। यदि तुम ठीक तरह से ध्यान करोगे, तो कार्यों के बीच भी मनःशक्ति की धारा तुम में प्रवाहित

होती रहेगी।..... जिस भावना से तुम ध्यान करोगे, वही तुम्हारे कार्यों में प्रकट होगी। ज्यों-ज्यों इसमें पटु होते जाओगे, त्यों-त्यों, मनुष्यों, घटनाओं एवं वस्तुओं के प्रति तुम्हारा व्यवहार बदलता जायगा। तुम्हारे कार्य स्वतः तुम्हारी उपासना का अनुगमन करेंगे।

ब्रण्टन—तो आप योगियों से सहमत नहीं हैं ?

महर्षि—मनुष्य को निजी स्वार्थ का त्याग करना चाहिए; क्योंकि उसी के कारण वह संसार के बन्धनों में बँध जाता है। इस असत् निजत्व का त्याग करना ही सच्चा त्याग है।

ब्रण्टन—संसारिक कर्मों का यह जीवन व्यतीत करते हुए ऐसा करना कैसे संभव हो सकता है ?

महर्षि—कर्म और ज्ञान में कोई विरोध नहीं है।

ब्रण्टन—क्या आप कहते हैं कि कोई अपने पेशे के सब कार्य करते हुए भी ज्ञान प्राप्त कर सकता है ?

महर्षि—क्यों नहीं ? बात यह है कि उपासना में अग्रसर होने पर तुम यह भूल जाओगे कि यह सब कार्य मेरा वही पुराना व्यक्तित्व (Personality) कर रहा है। धीरे-धीरे तुम्हारी अनुभूति एवं चेतना का स्थान बदलता जायगा। यहाँ तक कि अन्त में वह उसके अन्दर केन्द्रित हो जायगी, जो इस क्षुद्र निजत्व के परे है।

ब्रण्टन—कार्य में लगे हुए आदमी के लिए ध्यानादि के लिए समय निकालना कठिन है।

महर्षि—ध्यान के लिए अलग निश्चित समय की आवश्यकता तो केवल आरंभिक साधकों के लिए है। जिसका आध्यात्मिक

विकास होता जा रहा है, वह तो कार्य करते हुए या काम न होने पर, हर हालत में, गंभीर दिव्यानन्द का अनुभव करेगा। उसके हाथ जब समाज में कार्य करते होते हैं, तब वह अपना मस्तिष्क एकान्त में शीतल रखता है।......तुमको अपने से प्रश्न करना चाहिए—'मैं कौन हूँ ?' इस अन्वेषण से अन्त में तुम्हें अपने अन्दर किसी ऐसी वस्तु का भान होगा, जो मन के पीछे है। इस महान् समस्या को सुलझाओ, अन्य सब समस्याएँ अपने आप सुलझ जायँगी।......इसको यों समझो। मनुष्य सदा ऐसा सुख चाहता है जिसमें शोक की ज़रा भी छाया न हो। वह अनन्त, निरतिशय, आनन्द प्राप्त करना चाहता है। यह मनुष्य की अत्यन्त प्राकृतिक प्रेरणा है और सत्य प्रेरणा है। किन्तु कभी तुमने विचार किया है कि इतना होते हुए भी मनुष्य अपने को सब से अधिक चाहता है ? अब इसके साथ इस बात का समन्वय करो कि मनुष्य, मदिरापान या धर्म किसी के द्वारा, सदा आनन्द प्राप्त करना चाहता है; बस तुम्हें मनुष्य की सच्ची प्रकृति की कुंजी प्राप्त हो जायगी।

ब्रण्टन—मेरी समझ में नहीं आया।

महर्षि—मनुष्य की सच्ची प्रकृति आनन्द है। आनन्द सच्ची आत्मा में सदा उत्पन्न है। इसलिए मनुष्य की आनन्द की यह खोज, वस्तुतः अनजाने, अपनी सच्ची आत्मा की खोज है। यह सच्चा 'अहम्' या आत्मा अमर है, इसलिए जब मनुष्य उसे जान जाता है,तब वह ऐसे आनन्द को पालेता है जिसका अन्त नहीं है।

ब्रण्टन—यह आत्मा वस्तुतः क्या है ? आपकी बात सच मानते हैं,तो मनुष्य में एक दूसरे निजत्व (Self) को मानना होगा।

महर्षि—इस बात को समझने के लिए मनुष्य को अपना विश्लेषण करना होगा, अपने विषय में गम्भीरतापूर्वक सोचना होगा। क्योंकि बहुत दिनों से मनुष्य की आदत पड़ गई है कि वह अपने बारे में उसी तरह सोचता है, जिस तरह दूसरे लोग सोचते हैं। उसने कभी ठीक तरह से अपने 'अहम्' का, अपने 'मैं' का सामना नहीं किया है। उसको अपने असली चित्र, असली रूप का पता नहीं है। उसने बहुत दिनों से अपने को शरीर एवं दिमाग़ समझ रखा है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि इस बात का अन्वेषण करो कि मैं कौन हूँ ?

......तुम आत्मा का सच्चा रूप पूछते हो ? उसका वर्णन तो क्या किया जा सकता है। इतना कहता हूँ कि यह 'वह' है, जिससे हमें अपनी जीवात्मा का, अपने निजी 'अहम्' या 'मैं' का भान होता है और जिसमें अन्त में वह विलीन हो जायगा।

ब्रण्टन—विलीन ? मनुष्य अपने निजत्व की अनुभूति कैसे भूल सकता है ?

महर्षि—प्रत्येक मनुष्य के मन का पहला एवं प्रधान भाव 'अहम्' का, 'मैं' का भाव है। इस विचार के जन्म के बाद ही दूसरा कोई विचार उत्पन्न हो सकता है। जब मन में प्रथम व्यक्तिगत सर्वनाम 'मैं' का जन्म हो चुकता है, तभी द्वितीय सर्वनाम 'तुम' प्रकट होता है। यदि तुम्हारा मन इस 'मैं' के पीछे-पीछे उसके

उद्गम तक पहुँच सके, तो तुम्हें मालूम होगा कि जैसे इस विचार का जन्म सबसे पहले होता है, वैसे ही उसका लोप भी सब के बाद होता है। यह बात अनुभव की जा सकती है।

साधना का मार्ग

ब्रण्टन—क्या अपने ही अन्दर यह परीक्षण संभव है ?

महर्षि—अवश्य। मनुष्य के लिए पूर्णतः संभव है कि वह तबतक अन्तःमुखी होता जाय, जबतक कि इस अन्तिम भाव 'मैं' का धीरे-धीरे सर्वथा लोप न हो जाय।

ब्रण्टन—फिर शेष क्या रहेगा ? क्या तब मनुष्य अचेत न हो जायगा ?

महर्षि—नहीं। इसके विपरीत उसमें वह चेतना उत्पन्न होगी, जो अमर है। जब मनुष्य को सच्चे स्वरूप का अनुभव होगा, तो वह सचमुच ज्ञानी बन जायगा।

ब्रण्टन—किन्तु 'मैं' का भाव तो तब भी रहेगा ?

महर्षि—यह 'मैं' का भाव व्यक्ति का, शरीर का, मस्तिष्क का है। जब मनुष्य को प्रथम बार सच्चे स्वरूप का ज्ञान हो जाता है, तब उसके अन्तरतम से एक भिन्न वस्तु उठती है और उस पर अधिकार कर लेती है। यह वस्तु मन के पीछे है; यह असीम, दिव्य और चिरन्तन है। इसे कुछ लोग स्वर्गराज्य कहते हैं, कुछ आत्मज्ञान कहते हैं; कुछ निर्वाण के नाम से पुकारते हैं। हम हिन्दू इसे मोक्ष कहते हैं। तुम इसे किसी भी नाम से पुकार सकते हो। जब ऐसी अवस्था होती है, तब मनुष्य अपने को खोता नहीं,

वरन् पाता है।......जब तक मनुष्य आत्मा के इस अन्वेषण में नहीं लगता, तब तक बराबर उसे सन्देह और शंकाएँ बनी रहती हैं। संसार के बड़े-बड़े सम्राट एवं राजनीतिज्ञ अगणित व्यक्तियों पर शासन करते हैं, पर वे स्वयं अपने पर नियंत्रण नहीं रख सकते। जिस व्यक्ति ने अपने अन्तर की गहराई में प्रवेश किया है, उसके हाथ में अमोघ शक्ति होती है। संसार में प्रबल प्रतिभा रखनेवाले ऐसे व्यक्ति हैं, जो अपना जीवन अनेक वस्तुओं के ज्ञान में खर्च करते हैं। इनसे पूछो कि क्य उन्होंने मनुष्य के रहस्य को जान लिया है? क्या उन्होंने अपने ऊपर विजय प्राप्त की है? उनका सिर लज्जा से झुक जायगा। जब तुम्हें अपना ही ज्ञान नहीं है, तब दुनिया की अन्य चीज़ों के बारे में जान कर क्या करोगे? मनुष्य इस प्रश्न को टालता है, पर इसे हल करने से बढ़कर और क्या है?

ब्रण्टन—यह काम अत्यन्त कठिन, मनुष्य की शक्ति के परे है।

महर्षि—इसके संभव-असंभव का ज्ञान बिना अपने अनुभव के नहीं हो सकता। पर जितना कठिन तुम ख़याल करते हो, उतना कठिन यह नहीं है।......सत्य की साधना भारतीयों या पाश्चात्यों के लिए एक ही है।'हाँ, जो सांसारिक जीवन में अत्यन्त आसक्त हैं, उनको अधिक कठिनाई पड़ेगी; परन्तु इस पर विजय तो पाना ही चाहिए। ध्यान एवं उपासना से जो धारा उत्पन्न होती है, उसे अभ्यास से स्थिर रखा जा सकता है और मनुष्य अपना प्रत्येक कार्य अन्तःशक्ति की उस धारा के बीच में रहते हुए कर सकता है। धारा का स्रोत विच्छिन्न नहीं होगा और बाह्य जीवन

के कार्यों एवं ध्यान अथवा उपासना में कोई विरोध न रह जायगा। यदि तुम इस प्रश्न पर गहरा विचार करोगे कि 'मैं कौन हूँ' और तुम्हें इसका भान होने लगेगा कि तुम न तो शरीर हो, न मस्तिष्क हो और न आकांक्षाएँ हो, तब तुम्हें अन्दर से स्वतः तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मिलेगा।—सच्चे स्वरूप, सच्ची आत्मा को जानो; सत्य सूर्य के प्रकाश की भांति तुम्हारे अन्दर प्रकाशित हो उठेगा। मन स्थिर होगा और उसमें आनन्द की बाढ़ आ जायगी; क्योंकि आनन्द और आत्म-ज्ञान एक ही चीज़ हैं। जिस दिन तुम्हें आत्म-ज्ञान होगा, तुम्हारे अन्दर कोई शंका न उठ सकेगी।"

ब्रण्टन कुछ अर्द्ध-सन्तुष्ट अवस्था में वहाँ से उठते हैं। दिन भर जंगल में जाकर विचार करते हैं। सन्ध्या समय लौटते हैं; क्योंकि दो घंटे के अन्दर ही उनको स्टेशन के लिए रवाना होना है।

एक अनिर्वचनीय अनुभव

हाल में सुगन्धित द्रव्य जल रहे हैं। महर्षि आराम के साथ, गद्दी के सहारे, बैठे हैं। यह पूर्ण विश्राम का आसन है। वह ब्रण्टन की ओर देखते हैं पर बोलते नहीं। धीरे-धीरे उनकी आँखों में प्रकाश-सा भर रहा है और वे स्थिर हो रही हैं। उनका शरीर कड़ा होता जाता है। उनका सिर ज़रा हिलता है, फिर स्थिर हो जाता है। चन्द मिनट और। अब वे समाधि की अवस्था में हैं। सब चुप, शान्त हैं। मिनट पर मिनट बीत रहे हैं, पर शान्ति बढ़ती जाती है। ब्रण्टन ने लिखा है—मैं धार्मिक नहीं हूँ, पर मेरे अन्दर जो भाव उमड़ रहा है, उससे अपने को मुक्त करने में मैं

वैसे ही असमर्थ हूँ, जैसे मधुमक्षिका सुन्दर पराग से भरे हुए फूल को देखकर उसके आकर्षण से अपने को अलग नहीं कर सकती । ब्रण्टन लिखते हैं :—"हाल एक सूक्ष्म, अदृश्य एवं अनिर्वचनीय शक्ति से भर रहा है । यह शक्ति मुझे बहुत अधिक प्रभावित कर रही है । मुझे स्पष्ट अनुभव हो रहा है कि इस रहस्यमय शक्ति के केन्द्र महर्षि हैं ।"

ब्रण्टन आगे लिखते हैं—"महर्षि की आँखें अद्भुत प्रकाश से चमक रही हैं । मेरे अन्दर विचित्र सनसनी हो रही है । प्रकाश के वे अंगारे (नेत्र) मेरी आत्मा के अन्तरतम को देखते हुए जान पड़ते हैं । मुझे जान पड़ता है कि महर्षि मेरे दिल की प्रत्येक बात को देख रहे हैं । उनकी रहस्यमय दृष्टि मेरे विचारों, मेरे भावों और मेरी कामनाओं को बेध रही है । इस दृष्टि के सम्मुख मैं बेबस हूँ ।···धीरे-धीरे मेरे अन्दर महान् परिवर्तन हो रहा है । मुझे ऐसा जान पड़ता है कि महर्षि ने मेरे मन के साथ अपने को जोड़ दिया है और मेरे हृदय में वह व्यापक शान्ति आ रही है, जिसका उनके अन्दर अविच्छिन्न प्रवाह है । इस असाधारण शान्ति में मैं एक दिव्यता एवं हलकेपन का अनुभव कर रहा हूँ । जैसे समय स्थिर होगया है । मेरा हृदय चिन्ताओं के बोझ से मुक्त हो गया है और ऐसा अनुभव होता है कि अतृप्त कामनाओं के दुःख और क्रोध की तिक्तता का फिर कभी मेरे अन्दर प्रवेश न होगा । मुझे यह भी अनुभव होता है कि वह प्रेरणा, जो मनुष्य जाति के मूल में है और जो मनुष्य को ऊपर देखने को प्रेरित

करती है, उसे आशा और ढाढ़स देती है और जब जीवन अन्धकार से घिर जाता है, तब भी उसके अस्तित्व को कायम रखती है, सच्ची प्रेरणा है।......इस सुन्दर विस्मृतिपूर्ण शान्ति में, अतीत जीवन के दु:ख और ग़लतियाँ नगण्य-सी लगती हैं। मेरा मन महर्षि के मन में विलीन होता जा रहा है और ज्ञान की किरणें चमक रही हैं। इस आदमी की दृष्टि जादू की लकड़ी के समान है, जिसने मेरी सांसारिक आँखों के सामने अकस्मात् प्रकाश का एक गुप्त जगत् लाकर खड़ा कर दिया है।"

इसी रात को ब्रण्टन ने महर्षि के आश्रम से विदाई ली। वे सारे भारत में घूमते रहे। अपनी खोज एवं भ्रमण में उनकी अनेक सन्तों, योगियों, जादूगरों एवं असाधारण पुरुषों से भेंट हुई। इन में से कुछ का वर्णन हम आगे करेंगे; पर उनको कहीं वह शान्ति न मिली जो महर्षि के पास मिली थी। एक द्रष्टा ने तो उनको स्पष्ट कहा कि तुमको पुनः महर्षि के पास लौटना पड़ेगा और उनसे मिले बिना तुम भारत नहीं छोड़ सकते। यद्यपि ब्रण्टन का सब कार्यक्रम निश्चित था, पर द्रष्टा की भविष्यवाणी पूरी हुई। उन्हें पुनः महर्षि के पास लौटना पड़ा। इस यात्रा में उनको बताया गया था कि तुम्हें सच्चे गुरु की खोज करनी चाहिए। इसलिए ब्रण्टन फिर अनिश्चय में पड़ गये थे। उनके इस अनिश्चय को देखकर महर्षि ने कहा—"यह गुरु एवं शिष्य की बात क्या है? ये भेद तो केवल शिष्य के दृष्टिकोण से हैं। पर जिसने आत्म-साक्षात्कार कर लिया है, उसके लिए न गुरु है, न शिष्य है। वह तो सबको समदृष्टि

से देखता है।···तुमको गुरु करना है, तो स्वयं अपने ही अन्दर, अपनी आध्यात्मिक चेतना में, गुरु की खोज करो। तुमको गुरु के शरीर, रूप के प्रति वही भाव रखना चाहिए जो गुरु स्वयं अपने शरीर के प्रति रखता है। शरीर उसका असली स्वरूप नहीं है। वह शरीर नहीं है।"

एक दिन जब ब्रण्टन कुछ निराश-से बैठे थे, महर्षि ने कहा कि जो व्यक्ति उक्त मार्ग पर चलता है। उसके सामने महत् लक्ष्य है।

ब्रण्टन—परन्तु यह मार्ग कठिनाइयों से भरा है और मुझे अपनी दुर्बलताओं की पूरी जानकारी है।

महर्षि—यही विचार, यह अपने मन को असफलता के भय एवं दुर्बल भावनाओं के बोझ से भर देना तो सब से बड़ी बाधा है।

ब्रण्टन—फिर भी यदि यह सत्य है—?

महर्षि—नहीं, यह सत्य नहीं है। मनुष्य की सब से बड़ी ग़लती यह है कि वह सोचता है कि मैं प्रकृतया दुर्बल हूँ; प्रकृतया बुरा हूँ। पर सचमुच तो प्रत्येक मनुष्य दिव्य एवं शक्तिमान है। दुर्बल एवं बुरी तो उसकी आदतें, उसकी आकांक्षाएँ एवं उसके विचार हैं; स्वयं वह दुर्बल या बुरा नहीं है।

ब्रण्टन का विवेक जाग्रत हुआ। उन्होंने महर्षि-निर्दिष्ट साधना की शरण ली और यद्यपि वह पाश्चात्य जीवन की हलचलों के बीच रहते हैं, फिर भी उनकी सन्तोष-जनक आध्यात्मिक उन्नति हो रही है।

: ५ :

जीवन्मुक्त महात्मा—'महर्षि रमण'

ब्रण्टन के अनुभवों के सिलसिले में मैं संक्षेप में महर्षि रमण के विषय में लिख आया हूँ किन्तु इस भूतवाद के युग में इस महापुरुष के सम्बन्ध में किंचित विस्तार से लिखने की आवश्यकता है। जितने साधक और मुमुक्षु इनके सम्पर्क में आये हैं, उन पर इनका अश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा है। बहुत-से भक्त इनको षड़ानन का अवतार मानते हैं। यह तो भक्तों की बात हुई, पर निरपेक्ष दर्शक के ऊपर भी इतना प्रभाव तो पड़ता ही है कि यह जीवन्मुक्त परमहंस हैं। महा शून्य की ओर देखते-देखते इनकी दृष्टि उसी में मिल गई है। आँखों में असाधारण ज्योति है; यह ज्योति निश्चल है। जैसे रूप और आकार को भेदकर किसी अरूपतत्व में इनकी दृष्टि केंद्रित है। जब वह बात करते हैं, चलते हैं तब भी इसी अरूप चिरतत्व में उनकी दृष्टि केंद्रित रहती है। उनका 'मैं' शरीर, नाम रूप और स्थिति को भेदकर परमात्म-तत्व में मिल गया है और वह अपने को उसी परम चिदंश रूप में अनुभव करते हैं। यह योगी से भी उच्च कोटि के महात्मा हैं। यह ऋषि हैं।

जन्म, बालपन

मदुरा से लगभग तीस मील दक्षिण तिरुच्चुली नामक एक गाँव है। यह विरुद नगर स्टेशन से अठारह मील दूर है। इसके निकट कौंडिन्या नदी बहती है, जिसे पापहरी भी कहते हैं। कहा जाता है, इस नदी के तट पर कौंडिन्य ऋषि ने तप किया था। तिरुच्चुली एक पवित्र तीर्थ के रूप में भी प्रसिद्ध है। इस शब्द का अर्थ 'ओंकार' है। इसी गाँव में पाराशर गोत्रीय द्रविड़ स्मार्त्त ब्राह्मण श्री सुन्दरमय्यर के घर देवी अलघम्माल के गर्भ से १८७६ ई० की तीसरी दिसम्बर को रात को एक बजे बालक वेंकट रामन (अब महर्षि रमण) का जन्म हुआ था। ‡श्री सुन्दरमय्यर वकालत करते थे और उनको अपने पेशेमें काफ़ी सफलता मिली थी।

यह कुटुम्ब अपने सदाचरण एवं आध्यात्मिकता के प्रति अनुरक्ति के लिए प्रसिद्ध रहा है। सुन्दरमय्यर के चाचाओं में एक संन्यासी बन गये। सुन्दरमय्यर के भाई वेंकटेशय्यर एक दिन घर से निकल गये और संन्यास लेकर शिवानन्द बन गये जिनके अनेक शिष्य हैं। सुन्दरमय्यर भी सदा दीन-दुखी आदमियों की सहायता किया करते थे। वह अपनी सज्जनता के लिए प्रसिद्ध थे। हरि-कीर्त्तन, हरिकथा इत्यादि कराते रहते थे और स्वयं बड़े प्रेम से

‡ श्रीरमण चरितामृतमें इनकी जन्म कुण्डली इस प्रकार दी हुई है:—

जन्म—चन्द्रमान पंचांग के अनुसार प्रमाधि मार्गशीर्ष कृष्ण द्वितीया सोमवार रात की १६॥ घटिका व्यतीत होने पर पुनर्वसु नक्षत्र में।

उसमें शामिल होते थे। इस प्रकार वातावरण और संस्कार की अनुकूलता थी।

परन्तु वेंकट रामन में वचपन में कोई भी विशेषता न थी। प्रतिभा भी प्रखर न थी। इनके बड़े भाई नागस्वामी इनसे कहीं बुद्धिमान थे। अपनी कक्षा में सदा आगे रहते थे और परीक्षाओं में बड़े अच्छे नम्बरों से, प्रायः प्रथम श्रेणी में, पास होते थे। वेंकट रामन की पढ़ाई में कोई ऐसी विशेषता न थी। हाँ, गणित और तमिष में अवश्य उनकी विशेष गति थी। खेल कूद में वह बड़ी दिलचस्पी लेते थे। कुश्ती लड़ने, डंड-बैठक करने में उनका मन ख़ूब लगता था। फुटबाल खेलने, तैरने के वह शौकीन थे। बरसाती नदियों में तैरा करते थे। झगड़े फ़साद, मार-पीट में भी कुछ कम न थे।

हाँ, इनमें दो बातें अवश्य ऐसी थीं जिनमें इनके भावी जीवन का बीज छिपा था। एक तो यह कि यह बोलते बहुत कम थे; दूसरी बात यह कि गहरी नींद में कुभंकर्ण ही थे। सोते तो फिर कितना ही शोर गुल हो, जल्द इनकी नींद नहीं टूटती थी। कहते हैं, इनकी नींद इतनी गहरी होती थी कि इनके बुरा मानने वाले लड़के इन्हें सोते में पकड़ कर उठा ले जाते और अच्छी तरह मार पीट कर फिर बिस्तर पर छोड़ जाते। नींद में सब कुछ वह चुपचाप सह लेते और जागने पर उन्हें इन बातों की कुछ याद भी न रहती थी। यह अवस्था 'स्वप्नचरण' (Somnambulism) की अवस्था से भिन्न थी क्योंकि स्वप्नचरण में आदमी

अनजान ही चलता, फिरता, लिखता अथवा अन्य काम करता है केवल जागने पर उसको इन बातों का स्मरण नहीं रहता। वेंकट रामन उस निद्रित दशा में कुछ करते नहीं थे और दूसरों के किये का कुछ ज्ञान भी उनको नहीं रहता था। जान पड़ता है, इस नींद में भावी गम्भीर समाधि के बीज छिपे थे।

ग्यारहवें साल की अवस्था तक वेंकट रामन तिरुच्चुली में तमिष का अध्ययन करते रहे। उस समय वह संस्कृत नहीं जानते थे। उन्हें धार्मिक विचारों का कुछ अनुभव न था। १८६५ में पिता का देहान्त हो गया। तबसे इनके बड़े भाई नागस्वामी तथा यह अपने चाचा श्री सुब्बय्यर के यहाँ मदुरा में रहकर अध्ययन करने लगे। स्काल मिडिल स्कूल और बाद में अमेरिकन मिशन हाई स्कूल (दसवीं श्रेणी) में इनकी पढ़ाई हुई। इस समय भी इनमें आध्यात्मिकता का कोई चिन्ह दिखाई न पड़ता था; न इनमें भक्ति की ही प्रेरणा थी।

बीजोद्भव

१८६५ के नवम्बर में वेंकट रामन को तिरुच्चुली का एक आदमी मिला। यह तीर्थयात्रा से लौटा था। पूछने पर उसने कहा—'अरुणाचल से आ रहा हूँ।' न जाने क्या बात थी कि अरुणाचल का नाम सुनते ही वेंकट रामन की नसों में बिजली दौड़ गई। जैसे किसी जलप्लावन में सब कुछ डूब गया हो। वह यह भी न जानते थे कि अरुणाचल क्या और कहाँ है। सुप्त स्मृति बिजली-सी उनके मन रूपी आकाश में चमकी और विलुप्त हो गई।

लगभग इसी समय वेंकट रामन को 'पेरिय पुराणम्' की एक प्रति मिली। 'पेरिय पुराणम्' तमिष में हिन्दी के 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' अथवा नाभादास जी के 'भक्तमाल' की भाँति है। इसमें तिरसठ नायनारों की वार्ता लिखी गई है। द्रविड़ देश-वासी ये नायनार आजन्म शिवोपासक रहे। भक्ति के उन्मेष से इन का हृदय सदा प्रफुल्लित रहता था। इस ग्रन्थ को पढ़ते-पढ़ते वेंकट रामन में भक्ति की लहरें उठने लगीं। इतने तल्लीन हुए कि भूख-प्यास भूल बैठे। यह पहला धार्मिक ग्रन्थ था जो उनके हाथ पड़ा था। उनको एक दूसरी निराली दुनिया का अनुभव होने लगा। उन नायनार भक्तों के प्रति वेंकट रामन के मन में असीम श्रद्धा का स्रोत बह चला। पर इस श्रद्धा के साथ अनुकरण की इच्छा जाग्रत न हुई। बीज अभी मिट्टी के नीचे था और फूटकर ऊपर अंकुरित नहीं हो पाया था।

इसी अवस्था में एक साल और बीता। १८६६ में एक घटना ऐसी हुई कि उनके जीवन की दिशा बदलने लगी। अगस्त का महीना था। वेंकट रामन बड़े ही स्वस्थ एवं बलवान थे। बीमारी का कोई लक्षण उनके न था। उस घटना का वर्णन उन्हीं के शब्दों में, संक्षेपमें, यह है—

"अचानक मुझे डर लगा कि मैं मरने वाला हूँ। जान पड़ा कि मैं मर ही रहा हूँ। शरीर में किसी प्रकार का परिवर्तन दिखाई नहीं दिया। अतः सोचने पर भी भय का कोई कारण सूझता न था।...... भावों का वेग इतना तीव्र था कि मृत्यु का भय और उस

का अनुभव एकसाथ होने लगे। शरीर सुन्न-सा हो गया। श्वास रुक गया, ओठ बन्द हो गये। किसी प्रकार की ध्वनि नहीं निकलती थी। मेरा शरीर वहीं लाश के समान पड़ा था।

"परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि मेरी मनोवृत्तियाँ ज्यों-की-त्यों बनी रहीं। मुझे विश्वास हो गया कि मरण इसी को कहते हैं। शरीर लकड़ी जैसा पड़ा था। इसे लोग श्मशान ले जायँगे और यह जलकर भस्म हो जायगा। इतना होते हुए भी मेरी 'अहंता' का बोध मिटा नहीं था। मुँह से 'मैं' का शब्द नहीं निकलता था किन्तु शरीर भाव के मटियामेट होने के साथ 'अहम्' भावना का नाश न हुआ। क्या यह शरीर 'अहम्' पदवाच्य है? कभी नहीं। शरीर जड़ है, ज्ञान-रहित है। मुझे तो अपनी सत्ता का, व्यक्तित्व का स्फुरण स्पष्ट रूप से भास रहा था। इससे स्पष्ट है कि 'अहम्' शरीर से भिन्न ही वस्तु है। मरण से पाँच तत्वों का यह पुतला भले ही ख़ाक हो जाय पर मरण कभी इस 'अहम्' पदवाच्य वस्तु सत्ता के पास भी फटक नहीं सकता। अतः अहम् अमर है; अविनाशी है। अहम् ही आत्मा है। मैं आत्मा हूँ; शरीर नहीं।

"यह ज्ञान बौद्धिक ज्ञान न था क्योंकि इन्द्रियजन्य न था। इन्द्रियाँ अब बहिर्मुख न थीं। दृष्टि अन्तर्मुख हो गई थी। अब इसमें मीन-मेष निकालने की जगह कहाँ? मेरा यह बोध प्रत्यक्ष अनुभव के समान निश्चल था। अतः तर्क की बाल की खाल निकालनेवाली युक्ति तथा अनुमान के लिए इसमें स्थान नहीं था।

'अहम्' पद-वाच्य पदार्थ ही वास्तव में 'सद्वस्तु' है। मरण के बाद यही एक वस्तु नित्य और अव्यय रहती है। सारी चेतन कलाएँ उसी से छूटती हैं, उसी से चारों ओर फैलती हैं और उसी में लय को प्राप्त होती हैं।"

इस प्रकार वेंकट रामन के जीवन का एक नया अध्याय आरंभ हुआ। उन्हें प्रत्यग्दृष्टि प्राप्त हुई। अब हर समय इस 'अहम्' की ओर उनकी चित्तवृत्तियाँ दौड़ने लगीं। दृष्टि अन्तर्मुखी होने लगी। इष्ट-मित्रों का साथ छूटने लगा। खेल-कूद से विरक्ति हो गई। जीवन की वृत्तियाँ एकाग्र होने लगीं। लड़ाई-झगड़े और ऊधम की प्रकृति बिल्कुल बदल गई। पहले कोई इनका ज़रा भी अपमान करता तो ये लड़े बिना रह नहीं सकते थे पर अब अभिमान विनष्ट होगया। दिल्लगी उड़ाने, अपमान करने का उन पर प्रभाव नहीं पड़ता था। वह एकान्तप्रिय होगये। खाने-पीने तथा सोने की भी अनेक बार याद न रहती। वह नियमित रूप से मदुरा के सर्वश्रेष्ठ मीनाक्षी सुन्दरेश्वर मन्दिर में जाने लगे। वहाँ एकान्त में बैठकर भगवद्भक्ति की याचना करते। उस समय की अपनी मनोदशा बताते हुए वह कहते हैं:—

"मैं बौद्धों के समान दुखःवादी न था क्योंकि मुझे तब तक दुनिया का अनुभव ही नहीं था। ऐसी अवस्था में यह ज्ञान कैसे हो कि वह दुःख से भरी हुई है? मैं मोक्षार्थी भी न था, क्योंकि मुझे बंधन का ज्ञान नहीं था। किससे छूटने की प्रार्थना करता? पुनर्भव के चक्र से छूटने की बात तो दूर रही, क्योंकि तबतक

मुझे बाइबिल, पेरिय पुराण और 'तेवारों' (भक्तिगीतों) को छोड़ किसी धार्मिक ग्रन्थ का नाम तक नहीं मालूम था। इन किताबों में सगुण, अनन्त कल्याण गुण-विशिष्ट प्रभु का स्तव है। निर्गुण सत्ता का नाम नहीं। उस समय मुझको यह बात बिल्कुल मालूम नहीं थी कि आत्मानुभूति के कई प्रकार के नाम होते हैं। मैं यह नहीं जानता था कि मेरे दिल में एक प्रकार की अजीब वेदना, आवेग आदि क्यों पैदा हो रहे हैं और किस लिये। आँख मींच-कर ध्यान में डूब जाते ही किसी प्रकार का ताप नहीं रहता था। किन्तु दूसरे समय ताप की सीमा नहीं रहती। उस परिताप को न मैं सुख कह सकता हूँ, न दुःख। वह अनिर्वचनीय था। मीनाक्षी सुन्दरेश और नायनारों की मूर्त्तियाँ देखने पर हृदय उछलकर ओठों तक आजाता। भाव का एक समुद्र मानो उमड़ने लगता। शास्त्र की परिभाषा में इस दशा को शुद्ध मानसावस्था या प्रज्ञान कहते हैं।······नाम जो भी हो, अनेक भावनाओं से प्रेरित होकर सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य के लिए, दिन-रात विरह-तप्त हो ईश्वर से, प्राणनाथ से विलाप करते हुए विनती करनेवाले भक्त लोग जिस दशा में पहुँच जाते हैं, मेरी भी वही दशा हुई।"

घर से पलायन

यह दशा केवल उस समय होती थी जब वह सुधि-बुधि में रहते थे। थोड़ी देर के लिए भी एकान्त मिलते ही आसन मारकर वह ध्यानस्थ होजाते और वहीं 'अहम्' की आत्म-धारा उनके शरीर में दौड़ने लगती। चित्त को आत्मलीन करके वह व्यापार-

शून्य हो जाते। लोग उनकी हँसी उड़ाते; उनके मार्ग में तरह-तरह की कठिनाइयाँ उपस्थित करते—विशेषतः इनके बड़े भाई नागस्वामी प्रायः व्यंग करते किन्तु इन पर इन बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। पढ़ाई में अब इनका ध्यान न था। घर-बाहर सर्वत्र इनका तिरस्कार होने लगा। इससे इनके मन में यह भाव आया कि 'चारों ओर जब तक शान्ति स्थापित न होगी तब तक हृदय में पूर्ण शान्ति नहीं आ सकती।' १८९६ की २९वीं अगस्त, शनिवार का दिन था। अँग्रेजी व्याकरण ठीक तरह याद न रहने के कारण अध्यापक ने उस पाठ को तीन बार घर से लिख लाने की आज्ञा की थी। दोपहर के समय वह छत पर बैठे पाठ लिख रहे थे। दो बार लिख चुके थे। तीसरी बार लिखने जा रहे थे कि मन में प्रश्न उठा—'क्या मैं कोई जड़ यंत्र हूँ कि बिना लक्ष्य के, बिना श्रद्धा के कोई काम करता हूँ ?' इस भावना के साथ ही क़लम बन्द हो गई। व्याकरण की पोथी नीचे गिर पड़ी। वेंकट रामन आसन मारकर ध्यान करने लगे। उनके बड़े भाई नागस्वामी वहीं बैठे यह सब देख रहे थे। उनके मुँह से निकला—'ऐसे को इनसे क्या काम ?' भाई ने और भी कई बार कहा था पर आज उनकी बात वेंकट रामन के दिल में तीर-सी चुभ गई। तुरन्त विचार आया—'भाई ठीक ही कहते हैं। पढ़ाई पर मेरी दृष्टि नहीं है। कुटुम्ब से मेरा कोई प्रयोजन नहीं। तब यहाँ रहने में लाभ क्या है ?' यह सोचते ही उनको अरुणाचल का फिर ध्यान आया। फिर उनका चित्त आनन्द-विभोर हो उठा। उनको जान पड़ा

भगवान् चुम्बक की तरह उन्हें खींच रहे हैं। उसी दिन वह घर से निकल पड़े। कुछ दूर गाड़ी पर, कुछ दूर पैदल—रास्ते में भूख-प्यास की कठिनाइयाँ उठाते पर शरीर के प्रति विस्मृत-से वह एक दिन उषःकाल (१ सितम्बर १८९६) तिरुवण्णमलै स्टेशन पर उतरे। उस समय इनके मन में इतना भावोद्वेग था कि स्टेशन पर गाड़ी खड़ी होते ही यह मन्दिर की ओर दौड़ पड़े। उस समय मन्दिर में कोई न था। इन्होंने वहाँ पहुँचकर विनती की कि 'पिता! आपकी आज्ञानुसार यह दीन पहुँच गया है। आप ही इसके रक्षक हैं।' थोड़ी देर की प्रार्थना के बाद भावावेग और संघर्ष सब मिट गया। पाँच-छः सप्ताह से वेंकट रामन के शरीर-भर में एक प्रकार की जलन थी। अरुणाचलेश का दर्शन करते ही वह मिट गई। अब से संसार से सब नाता तोड़ वेंकट रामन ने अरुणाचलेश के चरणों में सर्वस्वार्पण किया। और भावी दिव्य जीवन के लिए उनकी तपश्चर्या का आरम्भ हुआ।

तपश्चर्या

वेंकट रामन में प्राणमय कोश की शक्तियाँ खिल उठी थीं; विज्ञानमय कोश भी आत्मोन्मुख हो रहा था पर आनन्दमय कोश की अभी कोई अनुभूति न थी। उसके अनुभव के लिए तपश्चर्या की आवश्यकता थी। तपश्चर्या के विचार से उन्होंने संन्यास आश्रम ग्रहण करने का निश्चय किया। वह अपने को जगदीश्वर की सन्तान अनुभव करते थे। ऐसे आदमी का वर्ण क्या? इसलिए उन्होंने जनेऊ छोड़कर वर्ण-श्रेष्ठता के अभिमान का त्याग कर दिया।

शिर के लम्बे-लम्बे बाल दूर कर दिये। कोपीन धारण किया।

पर वस्तुतः वेंकट रामन के अन्तःसंस्कार ऐसे जग गये थे कि बिना चेष्टा के ही वह आत्म-साक्षात्कार के पथ पर अग्रसर होते जा रहे थे। देहात्म भाव का लोप हो चला था। बिना प्रयत्न के ही वह मौनी हुए। मौन-धारण महाव्रत है। मौन परमात्मा से जीव की एकता का सूचक है। महर्षि का कहना है कि जीव और ईश्वर का भेद मिटने पर जो सहज समाधि प्राप्त होती है उसीमें स्थित रहने का नाम पूर्ण मौन है। वेंकटरामन को सहज ही मौन-सिद्धि हो गई थी। वह मन्दिर में ही रहने लगे। लोग उस समय उन्हें ब्राह्मण परदेशी के नाम से पुकारते थे। मन्दिर के भीतर जो हज़ार-खंभों वाला मंडप है उसके बीच में पत्थर का एक चबूतरा है। इसी चबूतरे पर बैठकर वेंकटरामन तपश्चर्या करने लगे। प्रायः वह ध्यानस्थ रहते। कोई खाने को देता, खा लेते, किसी से माँगने नहीं जाते थे। लड़के और ऊधमी युवक वहाँ भी पहुँचते। निन्दा, हँसी-मज़ाक करते; वे इन्हें पागल समझते थे। कुछ बालक इन पर ढेले और पत्थर भी फेंकते थे। वेंकट रामन को शरीर की चिन्ता न थी पर इन बातों से तपश्चर्या में बड़ी बाधा पहुँचती थी। इसलिए इस चबूतरे के दक्षिण-पश्चिम में स्थित एक तहख़ाने में चले गये। इसमें घोर अँधेरा था। 'पाताललिंग' नामक एक शिवलिंग इस में था। इसकी कभी सफ़ाई न होती थी। इसमें कीड़े-मकोड़े का राज्य था। लड़के इस अँधेरे स्थान में जाने से डरते थे। अतः स्वामीजी (वेंकट रामन) उसी अँधेरी गुफ़ा में

चले गये। कीड़े उनकी जाँघों में काटते पर वह ध्यान में मग्न रहते। धीरे-धीरे सारा शरीर घाव से भर गया। उनसे रक्त एवं पीव भी निकलने लगा पर स्वामीजी को जैसे इन बातों का कुछ भान ही न रह गया था। कुछ दिनों बाद लड़के यहाँ भी दूर से ढेले फेंकने लगे। यह कृत्य देखकर एक दिन वेंकटाचल मोदली नाम के एक सज्जन ने, मंडप के पश्चिम स्थित बाग में अपने शिष्यों-सहित रहनेवाले पलनि स्वामी नामक मलयाली साधु के यहाँ जाकर सहायता माँगी। तीन आदमी वहाँ से आये। चारों ने मिलकर स्वामीजी को उठाया। उठाते समय उन्हें मालूम हुआ कि उनका सारा शरीर लहू और पीव से भर रहा है। वे लोग उनको उठाकर बाहर ले चले, तब भी उनकी निद्रा नहीं टूटी। ऐसी गहरी तपश्चर्या देखकर वे आश्चर्य-चकित रह गये। उन लोगों ने स्वामीजी के शरीर को 'गोपुर सुब्रह्मण्य स्वामी' के मन्दिर में लिटा दिया। तभी से उनका नाम ब्राह्मण स्वामी पड़ गया।

इस मन्दिर में एक मौन स्वामी रहते थे। उनका आहार बेल, उमाभिषेक का बचा हुआ दूध आदि था। उस स्वामी ने इन्हें भी मौनी समझ अपने आहार का एक भाग देना आरम्भ कर दिया। अभिषिक्त दूध में हल्दी, पानी, चीनी, अधपके केले, धूप इत्यादि सभी द्रव्य मिले रहते थे। इसी में से वह एक घूँट पी लेते थे। कभी-कभी ध्यानमग्न होने पर उनकी आँखें न खुलती थीं। उस समय लोग ज़बर्दस्ती उनका मुँह खोलकर जल डाल देते थे।

बाद में मंदिर के पुजारियों ने दोनों स्वामियों के लिए शुद्ध दूध का प्रबन्ध कर दिया।

कुछ दिन यहाँ रहने के बाद स्वामीजी ध्यान के लिए मंदिर के पूर्व-दक्षिण ओर स्थित फुलवाड़ी में चले गये। फिर वाहन मंडप में रहने लगे। वहां लड़कों द्वारा विघ्न होते देख कुछ दिन के लिए शिवगंगा के एक बेल के पेड़ तले—और बाद में एक महुए के वृक्ष तले रहे। 'मंगैपिल्लयार' के मंदिर में भी कुछ दिन तपश्चर्या की।

बाद में नायनार नामक एक शैव, स्वामीजी की तपश्चर्या देखकर प्रभावित हुआ। वह अच्छा पंडित था पर ग्रंथावलोकन से उसे शान्ति न मिली थी। वह स्वामीजी की सेवा और रक्षा करने लगा। भीड़ बढ़ती जाती थी और दुष्ट लड़कों से पल्ला न छूटता था। वह जब भोजन को जाता लड़के बहुत तंग करते। एक दिन एक ने स्वामीजी की पीठ पर पेशाब कर दिया। योग निद्रा से जागने पर उन्हें यह बात मालूम हुई। इससे उन्हें कुछ क्रोध या खेद नहीं हुआ पर वह समझ गये कि स्थान बदलने की आवश्यकता है। इसी समय तंविरान-नामक शैव साधु ने स्वामी जी से अपने गुरुमूर्त्तम् मंदिर में पधारकर तप करने की प्रार्थना की। फ़रवरी १८९७ में स्वामीजी ने उस मंदिर में प्रवेश किया। तब से लोगों ने उनको 'गुरुमूर्त्तम के स्वामी' नाम से पुकारना शुरू किया।

यहाँ बिना किसी बाधा के कुछ काल तक उनकी तपश्चर्या चली। ध्यान निमग्नता इतनी बढ़ गई कि शरीर के संस्कारों के

प्रति वह उदासीन होगये। बाल बढ़कर जटा-रूप हो गये। नाखून बहुत बड़े और टेढ़े होगये—यहाँ तक कि हाथ से कोई काम करने में असमर्थता अनुभव होने लगी। यहाँ चींटियों का बड़ा उत्पात था। पर उनके काटते रहने पर भी कभी-कभी कई दिनों तक निरन्तर स्वामीजी ध्यानस्थ रहते थे। उनकी यह कठोर तपश्चर्या देखकर लोगों की श्रद्धा, स्वार्थ-वश बढ़ चली। धनैषणा, पुत्रैषणा, रोगमुक्ति कामना तथा अन्य अनेक इच्छाएं लेकर लोग उनके पास एकत्र होने लगे। लोग उनके भोजनादि के लिए तरह-तरह की चीज़ें लाते और प्रत्येक चाहता कि स्वामीजी उसकी चीज़ ग्रहण करें। इन चीज़ों में दूध अधिक होता था। स्वामीजी ने इसका उपाय निकाल लिया। वह सब चीज़ों को मिला देते और उसमें से दिन में एक बार एक गिलास पी जाते। पर इन कठोर नियमों के कारण शरीर कृश होगया, चलने की ताक़त भी न रही। दिन में एक बार भी शौच न आता था अतः आँतें सूजी रहती थीं। उठने की चेष्टा करते तो शरीर चकराकर गिर पड़ता। हड्डी भर रह गई। ध्यान के वेग में शरीर, काल—दिन रात तिथि—का उनको कुछ ज्ञान नहीं रहता था। गुरुमूर्त्तम में कोई दीपक भी न था। ५--६ महीने बाद कहीं दीपक का प्रबन्ध हुआ। डेढ़ साल यहाँ बीता। यहाँ भी भीड़ बढ़ने लगी। इसलिए वेंकट-राम नायकर नामक एक सज्जन के अनुरोध पर वह उनके आम के बग़ीचे में, जो पास ही था, चले गये। यहाँ आने के बाद उनको समाधि सहज, नित्य होगई।

बाद में स्वामीजी पवलकुन्नु में जाकर रहने लगे। यहाँ उनकी माँ पता लगाते-लगाते पहुँची। बहुत रोईं, गिड़गिड़ाईं पर स्वामी-जी निश्चल, पत्थर समान, बैठे रहे। कुछ बोले नहीं। लोगों के अनुरोध से एक काग़ज़ पर लिखा—"कर्त्ता प्रत्येक जीव को उस के कर्म के अनुसार चलायेगा। लाख प्रयत्न करने पर भी जो नहीं होती है, वह नहीं ही होगी एवं होनी किसी के रोके नहीं रुकेगी। यह एकदम सच है। इसलिए सबसे मौन रहना ही बुद्धिमानी है।" वैराग्य ने ममता पर विजय पाई। माता रोते-रोते घर लौट गईं।

सिद्धावस्था

इस प्रकार स्वामीजी सिद्धावस्था में पहुँच गये। प्रायः कहा जाता है कि वर्तमान काल में तुरीयावस्था साध्य नहीं है पर स्वामी जी को वह सहज-साध्य हुई। १८६६ के लगभग श्री रमण स्वामी ने 'पवल कन्नु' अथवा प्रवाल गिरि को छोड़कर अरुणाचल को ही अपना स्थान बना लिया। वह पहाड़ की गुफा में रहते थे, जो विरूपाक्षि गुफा के नाम से प्रसिद्ध है। इसके आस-पास का दृश्य बड़ा सुहावना है। गुफा की आकृति ओंकार के समान है। कहा जाता है कि जब इसमें हवा झोंके के साथ घुसती है तब उसमें ओंकार का नाद सुनाई पड़ता है। इसमें विरूपाक्षि देव नाम के एक सिद्ध पुरुष की समाधि है। इस गुफा के उत्तर में 'मुलैपाल तीर्थ' (स्तन्यतीर्थ) है। उसके पास ही आम के पेड़ के नीचे एक गुफा है जिससे वह 'आम्रगुफा' के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ और ऊपर जाकर स्कन्दाश्रम है जिसके पास पानी का एक सोता बहता

है। छोटा बाग है जिसमें आम-नारियल के पेड़ हैं। रहने एवं रसोई तैयार करने के लिए अलग-अलग दो कमरे हैं। दो चबूतरे भी पास ही हैं। बड़ा सुन्दर स्थल है। स्वामीजी सुविधानुसार इन तीनों स्थानों में रहते थे, यद्यपि उनका मुख्य स्थान विरूपाक्षि गुफा ही थी।

अहिंसा और अभय का वातावरण

पहाड़ पर स्वामीजी के स्थान के चारों ओर कीड़ों-मकोड़ों का राज्य था पर उनको कभी मारने या कष्ट देने की चेष्टा नहीं की जाती थी। स्वामीजी कहते—"यह उनका राज्य है, हम यहाँ केवल पाहुने हैं। उन्हें दिक़ करने का हमें कोई अधिकार नहीं है।" तीन बार बिच्छुओं ने डंक मारा पर ज़हर नहीं चढ़ा। स्कन्दाश्रम में निवास करते समय एक दिन एक साँप आ गया। स्वामीजी की माँ भी उन दिनों वहीं रहती थीं। वह घबड़ा गईं। स्वामीजी शांत भाव से उसके निकट गये। कुछ देर तक टकटकी लगाये उसकी ओर देखते रहे। साँप निर्भय हो गया। पाँव के पास तक आया, फिर लौट गया। यह साँप समय-समय पर उनके दर्शनों को आया करता था। उनकी गोद में बैठने का प्रयत्न करता। आश्चर्य यह कि इस साँप और आश्रम के मोरों में बड़ी दोस्ती थी। वे अपनी स्वाभाविक शत्रुता भूल गये थे। जब मोर पंख पसारकर नाचने लगते तो साँप भी उनके साथ अपना फन पसारकर नाचने लगता था। जब ज़हरीले जन्तुओं का यह हाल था तो गिलहरियों, कौवों और चिड़ियों का क्या कहना? वे स्वामीजी के हाथ से पानी

पीते, मेवे खाते। एक कौवा प्रतिदिन सुबह होते ही अपने बच्चों को स्वामीजी की शरण में छोड़ जाता था। जब उनको भूख लगती वे बोल उठते। स्वामीजी उनको कुछ खिला देते थे।

स्वामीजी के पास बन्दर भी खूब प्रेम से आते थे। उन्होंने उनकी भाषा तक का अध्ययन किया था। वह उनसे बातचीत कर सकते थे। उनके बीच के झगड़े तै करते थे। स्वामीजी को बन्दरों के रस्मरिवाज की अच्छी जानकारी होगई थी। उन्होंने बताया है कि 'बन्दरों, में राजा, संधि, युद्ध आदि होते हैं। कोई बन्दर आदमियों की संगति में रहकर फिर लौट आये तो वह साधारणतः झुण्ड में नहीं लिया जाता।' स्वामीजी इस नियम के अपवाद थे। कभी-कभी जब बन्दरों के विभिन्न दलों में झगड़े हो जाते तब फ़ैसले के लिए वे स्वामीजी के पास आजाते। स्वामीजी दोनों दलों के बयान सुनकर फ़ैसला देते और सुलह करा देते।

एक बार की बात है। बन्दरों के राजा ने एक बन्दर के छोटे बच्चे को काट खाया। बच्चा बेहोश हो गया। उसे मरा समझ कर राजा वहीं छोड़ चला। वह छोटा बच्चा कुछ देर बाद लँगड़ाता हुआ विरूपाक्षि की गुफा पर चला आया। वहाँ उसकी सेवा की गई। पाँच-छः दिनों में वह अच्छा हो गया। बिरादरी वाले उसे खोजते आये और झुण्ड में ले लिया। इसका नाम 'नोंडि' (लँगड़ा) रख दिया गया। वह प्रायः आकर स्वामीजी की गोद में बैठता था। खाते समय अन्न का एक दाना गिरने नहीं देता था। एक दिन किसी कारण नोंडि ने थोड़ा अन्न छोड़ दिया। स्वामीजी

ने उसे टोका—'क्यों अन्न छोड़ते हो ? ऐसा करना ठीक नहीं।' इस पर उसने ग़ुस्से में आकर स्वामीजी की आँख पर थप्पड मार दिया। स्वामीजी शान्त रहे। उसे गोद में बैठने के अधिकार से वंचित रहने का दण्ड दिया गया। पर अपने कृत्य पर उसे बहुत पछतावा हुआ। स्वामीजी के पैरों में लोट-लोटकर उसने बड़ी मन्नतें की। फिर उसे गोद में बैठने का हक़ मिल गया। एक शेर भी मित्र-भाव से वहाँ आता था।

इस प्रकार की अनेक बातें हैं जिनसे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसी उनकी वत्सलता एवं सर्वव्यापी अहिंसा भाव का पता चलता है।

प्रधान शिष्य गणपति मुनींद्र

दूर के मुमुक्षुओं को स्वामीजी का परिचय देने का श्रेय गणपति मुनींद्र नामक एक बड़े विद्वान को है। यह आँध्र हैं; विजयनगरम् और बोब्बिलीके पास का कलुवराय अग्रहार इनका स्थान है। बचपन से ही यह अपनी तीव्र मेधा के लिए विख्यात रहे हैं। बचपन में ही स्मृतिशक्ति असाधारण थी। पढ़कर फिर भूल जाना इन्होंने नहीं जाना। दस वर्ष की उम्र में संस्कृत की अच्छी कविता कर सकते थे। पंचांग की गणना जानते थे। कई काव्य, व्याकरण इन्हें याद थे। बारह वर्ष की उम्र में दो सर्गों का एक काव्य 'भृङ्ग संदेश' मंदाक्रान्ता वृत्त में रचा था। चौदह वर्ष की उम्र में छन्द, व्याकरण, काव्य, अलंकार, इतिहास आदि में पारंगत हुए थे। अष्टावधानी, अच्छे व्याख्याता और आशुकवि थे। नवद्वीप

जाकर अपनी काव्यशक्ति से काव्यकण्ठ की उपाधि प्राप्त की। अठारह वर्ष की उम्र में गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया फिर भी तपश्चर्या और मन्त्र-जप की ओर उनका ध्यान सदा लगा रहता था। इसीलिए गंगा, यमुना, गोदावरी आदि पुण्य नदियों के तीर पर निवास किया। अपने इष्टमन्त्र शिवपंचाक्षरी का कोटि जप किया परन्तु शिव का साक्षात्कार न होने से मन में अशान्ति बनी रही। बाद में स्वामी जी के प्रति आकर्षित हो वह इनके पास शंका-निवारणार्थ आये। दण्डवत् करके बोले—"जो पढ़ना था सब पढ़ चुका। वेदान्त शास्त्र का खूब अध्ययन किया। जी ऊघाने तक मंत्र जप किया लेकिन आज तक मुझे 'तप' शब्द का सच्चा अर्थ मालूम नहीं हुआ। अब आपके चरण-कमल ही पार लगा सकते हैं। कृपा कर इस दीन को तप का अर्थ बताइए।"

१५ मिनट तक स्वामी जी स्थिर दृष्टि से गणपति मुनीन्द्र की ओर देखते रहे। फिर धीरे-धीरे तमिल में इस प्रकार बोले—

"अहंता का बोध जहाँ से निकलता है, उसी का परिशीलन करें तो मन उसी में लीन हो जाता है। यही जप है।"

"मन्त्र के जपते समय मन्त्र का नाद जहाँ से फूटता है उसका परिशीलन करें, तो मन उसी में लीन हो जाता है। यह तप है।"

१८९६ के सितम्बर में स्वामी जी ने मौन धारण किया था। यह घटना १९०७ की है। ये स्वामीजी के मुँह से निकले पहले शब्द थे। इनके कारण न केवल गणपति मुनीन्द्र की समस्त

शंकाएँ दूर हो गईं। मुमुक्षुओं के लिए सर्व दर्शन एवं योग के एक सरल महामन्त्र की घोषणा हुई। तभी से वह रमण महर्षि हुए।

स्वामीजी ने वैसे कोई शिष्य नहीं बनाया। वह आडम्बर से दूर भागते हैं। मंत्र, तंत्र, योग, सिद्धियों इत्यादि की साधना को उत्तेजन नहीं देते। सदा आत्मा के शोध की ही एक बात कहते हैं। चमत्कारों को बिल्कुल महत्त्व नहीं देते। फिर भी बहुत से आध्यात्मिक साधक एवं मुमुक्षु उनके निकट आते रहे। उनसे प्रभावित होते रहे। इन्हें ही उनका शिष्य मान लिया जाय तो भले माना जाय। गणपति मुनींद्र ऐसे ही शिष्य थे। अन्य शिष्यों में अनेक प्रकार के देशी विदेशी लोग हैं। इनमें हम्फ्रे, रामस्वामी अय्यर, शिवप्रकाशमपिल्ले, नटनानन्द स्वामी, रामनाथय्यर, सुन्दरम्माल, योगी रामैया, नरसिंहय्यर, शुद्धानन्द भारती, हारी डिकमैन, भिक्कु प्रज्ञानन्द (फ्रेडरिक फ़्लेचर), राफेलहर्स्ट या पालब्रंटन इत्यादि के नाम लिये जा सकते हैं।

कुछ दिनों बाद शिष्यों के आग्रह से स्वामीजी पालितीर्थ के पास आकर रहने लगे। धीरे-धीरे यहीं एक आश्रम बन गया। इसमें कुछ मकान पक्के, शेष कच्चे हैं। अतिथियों के लिए भोजन और ठहरने का भी प्रबन्ध है।

भारत में इस समय जितने महात्मा, सिद्ध और योगी हैं, उनमें महर्षि रमण बहुत ऊँचे हैं। उनमें प्रदर्शन की वृत्ति नहीं है। आडम्बर से उन्हें घृणा है। वह किसी को शिष्य नहीं बनाते-कहा करते हैं कि आत्मा ही गुरु है। उसी को खोजो। वह अपनी

सिद्धि की या गुप्त विज्ञानों की डुग्गी पीटकर किसी को अपनी ओर आकर्षित नहीं करते—न तर्क-वितर्क में पड़ते हैं। चमत्कारों एवं सिद्धियों का अस्तित्व मानते हैं पर किसी को उस पथ पर जाने की सलाह नहीं देते। कहते हैं—जो इन सब का मूल है, उसे प्राप्त करो। आश्रम की ओर से किसी को प्रचार करने जाने की आज्ञा उनकी नहीं है। वह आत्मानुभूति के उपदेष्टा हैं। समाज-सेवा पर ज़ोर देते हैं और उस सेवा-मार्ग में आगे बढ़ने के बाद ही एकान्त में साधना करने की सलाह देते हैं। वर्ण सम्बन्धी अभिमान उनके आश्रम में नहीं—छूतछात भी नहीं। सब का समान भाव से स्वागत है। महर्षि स्वयं तो राग-विराग सब के प्रति उदासीन हैं। उनकी तितिक्षा अद्भुत है। एक बार डाकुओं ने आश्रम पर हमला किया। उन्होंने बड़ा अत्याचार किया। स्वामी जी को भी बुरी तरह पीटा। कुछ शिष्य जब उन चोरों को मारने दौड़े तब स्वामीजी ने कहा—"देखो, हमको कभी अपना साधु-धर्म नहीं छोड़ना चाहिए। चोर बेचारे अज्ञ हैं। नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं। हमें तो धर्म-अधर्म का ज्ञान रखना चाहिए।" उन्होंने चोरों से कह दिया—"भई, जो चाहे उठा लेजाओ। उलटे उन्हें लालटेन भी देदी।" उनकी मार को शान्तभाव से सहा पर चोरों के प्रति ज़रा भी कटुता का भाव उनमें न आया।

निश्चय ही श्री रमण महर्षि हैं। वह योगियों से बहुत ऊँचे हैं। वह महर्षि हैं। वह जीवन्मुक्त तत्वदर्शी हैं। उन्होंने आत्मा के निराकाररूप की अनुभूति कर ली है।

: ६ :

कुछ योगी और साधक

योग ने बार-बार यह सिद्ध कर दिया है कि मानव में असीम संभावनाएँ हैं। योग मनुष्य की प्रसुप्त एवं प्रच्छन्न शक्तियों को जाग्रत कर देता है। सोने पर पड़ी हुई धूल उड़ जाती है और बहुमूल्य स्वर्ण चमकने लगता है। योग के बहुत ही साधारण और नगण्य प्रयोगों से आज संसार में कितने ही भयानक रोगों का इलाज हो रहा है और एक स्थान पर बैठे हुए मानसिक एवं आत्मिक शक्ति के द्वारा दूर के रोगियों की चिकित्सा संभव हो गई है।

समय-समय पर योग के चमत्कारों को देखने का अवसर सर्वसाधारण को भी मिलता रहता है, यद्यपि सार्वजनिक प्रदर्शन में रुचि रखनेवाले लोग योग की साधारण कोटि में ही होते हैं। अभी कुछ ही साल पहले हठयोगी श्री नृसिंह स्वामी ने कलकत्ता की जनता को अपने आश्चर्यजनक प्रयोगों से चकित कर दिया था। कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कालेज के फीज़िक्स थियेटर में यह प्रदर्शन हुआ था।

इस प्रदर्शन का ज़िक्र करते हुए कलकत्ता के एक प्रसिद्ध सर्जन (जो अब तक लगभग सात हज़ार आप्रेशन कर चुके हैं) डा० बन्द्योपाध्याय ने श्री ब्रण्टन से कहा था—"हम लोगों में काफ़ी तार्किक आदमी वहाँ थे और मैंने तो धर्म को जीवन में कभी विशेष महत्त्व नहीं दिया।......योगी थियेटर के बीच में खड़े हुए और उनको कालेज की प्रयोगशाला के भाण्डार से कुछ विष लाकर दिये गये। पहले हम लोगों ने उन्हें सलफ्यूरिक एसिड की बोतल दी। उन्होंने अपनी हथेली पर थोड़ा-सा एसिड गिराया और जीभ से चाट गये। इसके बाद उनको बहुत तेज़ कार्बोलिक एसिड दिया गया; उसे भी पहले की भाँति उन्होंने चाट लिया। इसके बाद हमने विख्यात प्राणघातक विष पोटैशियम साइनाइड का प्रयोग किया; पर उसे भी वह अत्यन्त उपेक्षा के साथ निगल गये। यह बात हमारे विज्ञान की दृष्टि से अविश्वसनीय थी, फिर भी हम आँखों से उसे देख रहे थे। उन्होंने इतना पोटैशियम साइनाइड लिया था कि दूसरे किसी भी आदमी का अन्त अधिक-से-अधिक तीन मिनट में हो जाता किन्तु यहाँ हमारी आँखों के सामने खड़े वह हँस रहे थे।"

इस प्रदर्शन के अवसर पर प्रसिद्ध वैज्ञानिक एवं नोबेल-पुरस्कार-विजेता सर सी० वी० रमन भी थे और उन्होंने इस प्रदर्शन को देखकर कहा था—"यह आधुनिक विज्ञान के लिए एक चैलेंज है।" जब नृसिंह स्वामी से इसका रहस्य पूछा गया, तो उन्होंने कहा कि "अपने स्थान पर लौटकर मैं योग-निद्रा में

लीन हो जाता हूँ और मन के केन्द्रीकरण द्वारा विषों के प्रभाव को दूर कर देता हूँ।"

काशी के योगी विशुद्धानन्द

काशी के योगी श्री विशुद्धानन्द की चर्चा श्री ब्रण्टन ने अपने ग्रन्थ में की है। इनके विषय में थोड़ा-बहुत मैं भी जानता हूँ। ब्रण्टन ने इनसे विशेष रूप से योग-क्रियाओं एवं योग शक्ति के प्रदर्शन की प्रार्थना की थी। वह लिखते हैं:—"जब मैं पहुँचा, कुछ लोग जमीन पर अर्द्धवृत्ताकर बैठे हुए थे और कुछ ही दूर पर एक कोच पर एक वृद्ध आराम से उठंगकर बैठे थे। उनके श्रद्धा उत्पन्न करने वाले रूप को देखकर मैं समझ गया, यही योगी विशुद्धानन्द हैं।......उनकी अवस्था ७० वर्ष से अधिक होगी। चेहरे पर लम्बी दाढ़ी है। बड़ी-बड़ी आँखें हैं। किसी विचित्र शक्ति से कमरा परिपूर्ण है।"

बहुत देर के बाद योगी ने बँगला में उत्तर दिया—"पण्डित गोपीनाथ कविराज के साथ कल तीसरे पहर आओ, तभी बात-चीत हो सकेगी।" गोपीनाथ जी संस्कृत, अँग्रेजी, जर्मन इत्यादि के प्रगाढ़ विद्वान् और गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज के प्रिंसपल हैं। वह विशुद्धानन्द के परमप्रिय शिष्य हैं।

दूसरे दिन ठीक ४ बजे श्री ब्रण्टन पं० गोपीनाथ जी के साथ योगी के स्थान पर पहुँचे और उनके पास बैठ गये। गोपीनाथजी दुभाषिये का काम करने लगे। योगी ने प्रश्न किया—"क्या तुम मेरा कोई चमत्कार देखना चाहते हो?"

ब्रण्टन—यदि आपकी दया हो, तो मुझे अजीब प्रसन्नता होगी।

विशुद्धानन्द—अच्छा, अपना रूमाल मुझे दो। यदि सिल्क का रूमाल हो, तो ज्यादा अच्छा होगा। जो सुगन्ध तुम चाहो, इस रूमाल पर आतशी शीशे एवं सूर्य-किरणों के द्वारा मैं पैदा कर सकता हूँ।

कमरे में सूर्य की किरण नहीं थी, इसलिए एक शिष्य हाथ का दर्पण लेकर बाहर गया और दर्पण पर पड़ने वाली किरणें कमरे में प्रतिबिम्बित हुईं। योगी ने ब्रण्टन का रूमाल लेकर पूछा, आप कौन-सी सुगन्ध चाहते हैं?

ब्रण्टन—चमेली की।

विशुद्धानन्द—अच्छा, मैं वायु से अभी वह सुगन्ध उत्पन्न करता हूँ।

योगी ने बायें हाथ में ब्रण्टन का रूमाल लिया और आतशी शीशा दाहिने हाथ से उनके ऊपर, थोड़ी दूर पर, रखा। दो सेकेण्ड तक एक सूर्य-किरण रूमाल पर पड़ी। इसके बाद योगी ने शीशा अलग रख दिया और रूमाल ब्रण्टन को लौटा दिया। ब्रण्टन ने नाक से रूमाल लगाया और उनके दिमाग में चमेली की ख़ुशबू भर गई।

ब्रण्टन ने अच्छी तरह रूमाल की परीक्षा की; पर उसमें कहीं गीलापन न था; न इस बात का कोई चिह्न था कि उसपर तरल सुगन्ध या इत्र टपकाया गया है। ब्रण्टन ने आश्चर्य से वृद्ध योगी

की ओर देखा। योगी ने चमत्कार को फिर से दिखाने का वचन दिया। ब्रण्टन ने इस बार गुलाब का इत्र चुना। ब्रण्टन लिखते हैं:—"इस बार मैं बड़े ध्यान से सब काम देखता रहा। ज़रा-सा हिलने-डुलने पर और योगी के चतुर्दिक मेरा ध्यान था। मैंने उनके हाथों की परीक्षा की; उनके दूध-से श्वेत वस्त्रों की जाँच करके देख लिया परन्तु कोई भी सन्देहजनक बात नहीं मिली। योगी ने पूर्व प्रयोग को दोहराया और मैंने देखा कि रूमाल के दूसरे किनारे पर गुलाब के इत्र की गहरी सुगन्ध मौजूद है।

तीसरी बार ब्रण्टन ने 'वायलेट' चुना। इस बार भी योगी ने वही क्रिया दोहराई और 'वायलेट' की खुशबू पैदा करदी।

ब्रण्टन लिखते हैं:—"विशुद्धानन्द अपनी विजयों से बिल्कुल अनासक्त-से हैं। वह सारे प्रदर्शन के प्रति दैनिक घटना के समान बर्ताव करते हैं—जैसे एक मामूली-सी बात हो। उनके चेहरे की गम्भीरता एक क्षण के लिए कम नहीं होती है।"

विशुद्धानन्द कहते हैं:—"अच्छा, इस बार सुगन्ध का चुनाव मैं करूँगा। मैं एक ऐसे फूल की सुगन्ध पैदा करूँगा, जो केवल तिब्बत में होता है।" वही क्रिया दोहराई जाती है और ब्रण्टन सूँघकर एक ऐसी सुगन्ध का अनुभव करते हैं जो उनकी पहचान के बाहर है।

ब्रण्टन इस चमत्कार से विस्मय-विमुग्ध थे कि योगी ने कहा—"यह साधारण-सी बात है। अभी सूर्य डूब रहा है। किसी और दिन दोपहर को, जब तेज़ धूप हो तब, आओ। मैं दिखाऊँगा कि

मरे हुए प्राणी को थोड़ी देर के लिए किस प्रकार जीवित किया जा सकता है।"

मृत्यु से जीवन में

नियत समय पर कविराजजी के साथ ब्रण्टन विशुद्धानन्द के यहाँ पहुँचे। योगी से ज्ञात हुआ कि मृत्यु से जीवन में लाने का प्रयोग अभी छोटे प्राणियों तक ही हो सका है। फलतः एक कबूतर पकड़कर उसका गला घोंट दिया गया। इसके बाद वह एक घण्टे तक सब के सामने पड़ा रहा ताकि लोग देख सकें कि वह पूर्णतः निर्जीव है। उसकी आँखें पथरा गईं और शरीर लकड़ा गया। ब्रण्टन ने स्वयं ही लिखा है—"मैं एक भी ऐसे लक्षण का पता नहीं लगा सकता, जो उस छोटे प्राणी में जीवन के अस्तित्व का सूचक हो।"

योगी ने आतिशी शीशा लिया और उसके द्वारा पक्षी की एक आँख में सूर्य-किरण का प्रतिविम्ब केन्द्रित किया। कुछ देर तक ऐसा करने के बाद उन्होंने कुछ मन्त्र पढ़ना आरंभ किया और थोड़ी देर में पक्षी का शरीर हिलने लगा। ऐसा जान पड़ता था कि मृत्यु की वेदना से वह तड़प रहा है। कुछ देर और उसने पर फड़फड़ाये और देखते-देखते पैरों पर खड़ा हो गया। चन्द मिनट और बीते; पक्षी कमरे में उड़ा। आध घण्टे से ज्यादा समय तक वह एक जगह से दूसरी जगह उड़ता रहा। फिर निर्जीव होकर गिर पड़ा।

ब्रण्टन—क्या आप उसके जीवन की अवधि और बढ़ा सकते थे?

योगी—इस समय तो मैं तुम्हें इतना ही बता सकता हूँ।

इन विशुद्धानन्दजी की और भी अद्भुत शक्तियाँ देखी गई हैं। यह हवा से ताजे अंगूरों का गुच्छा पैदा कर सकते हैं और शून्य से मिठाइयाँ प्राप्त कर सकते हैं। कोई मुर्झाया हुआ फूल हाथों में लेकर उसे बिल्कुल तरोताज़ा कर दे सकते हैं।

इस शक्ति का रहस्य

ब्रण्टन के बार-बार पूछने पर कि आप यह चमत्कार कैसे करते हैं, विशुद्धानन्द ने बताया कि यह 'योगाभ्यास' का फल नहीं है; वरन् 'सौर-विज्ञान' या 'सूर्य-विज्ञान' की जानकारी का परिणाम है। योग में तो योगी की इच्छा-शक्ति का विकास एवं ध्यान के केन्द्रीकरण का अभ्यास करना पड़ता है; पर सौर-विज्ञान के अभ्यास में इन गुणों की कोई आवश्यकता नहीं है। सौर-विज्ञान तो कुछ गूढ़ रहस्यों एवं सत्यों की जानकारी पर निर्भर है और उनके लिए कोई बहुत ज्ञान की भी ज़रूरत नहीं है। इसका अध्ययन पश्चिम के भूत-विज्ञानों की तरह ही किया जा सकता है। यह विद्युत्-विज्ञान एवं चुम्बकत्व के सिद्धान्त से बहुत मिलता-जुलता है।......यह सौर-विज्ञान, जिसका ज्ञान मुझे तिब्बत में हुआ, भारत के लिए नया नहीं है। प्राचीन काल में यह भारत के महान् योगियों को भली भाँति ज्ञात था। किन्तु अब दो-चार को छोड़कर भारत से इसके ज्ञान का लोप हो गया है। सूर्य की किरणों में जीवनदायी उपकरण मौजूद हैं। यदि तुम जान लो कि उन उपकरणों का पृथक्करण या निर्वाचन किस प्रकार किया जाता है,

तो तुम अनेक अद्भुत कार्य कर सकते हो। सूर्य प्रकाश में ईथर की अनेक ऐसी शक्तियाँ निहित हैं कि उन पर नियन्त्रण स्थापित करके तुम उनसे आश्चर्यजनक कार्य ले सकते हो।"

दूर-दर्शी

श्री ब्रण्टन जब मोटर से बम्बई प्रान्त में भ्रमण कर रहे थे, तब एक दिन सड़क के किनारे, तीसरे पहर, उनको दो आदमी बैठे हुए मिले। श्रीब्रण्टन के साथ एक हिन्दू ड्राइवर था जो दुभाषिये का भी काम करता था। ब्रण्टन इन आदमियों को देखकर प्रभावित हुए; उन्होंने मोटर रोक दी और अपने हिन्दू ड्राइवर और साथी को पता लगाने के लिए भेजा। ड्राइवर ने लौटकर बताया कि दोनों गुरु-चेला हैं। बंगाल के निवासी हैं और दो वर्ष से यात्रा पर निकले हुए हैं। शिष्य के विवरण से जान पड़ता है कि उसके गुरु एक अच्छे योगी हैं और उनका नाम चण्डीदास है।

ब्रण्टन ने उनसे मोटर में बैठ जाने का अनुरोध किया, जिसे उन्होंने मान लिया। शाम होते-होते एक गाँव में पहुँचे और निश्चय हुआ कि रात वहीं बिताई जाय। बड़ी कठिनाई से योगी ने बात-चीत करना स्वीकार किया। ब्रण्टन उनके ठहरने के स्थान पर पहुँचे तो वह नहीं थे। किसी रोगिणी माता को आशीर्वाद देने के लिए लोग लिवा ले गये थे। अन्त में जब आये तो आसन मार कर ज़मीन पर बैठ गये। ब्रण्टन ने कम्बल बिछाना चाहा पर उन्होंने अस्वीकार कर दिया। ब्रण्टन ने वृद्ध को बहुत नज़दीक से देखा। उनकी अवस्था ५० के लगभग होगी; पर आँखों में

इतना प्रकाश ब्रण्टन ने किसी मानव में न देखा था। योगी ने ब्रण्टन से पूछा—"तुमने भ्रमण तो खूब किया है ?"

ब्रण्टन—हाँ।

योगी—मास्टर महाशय* के सम्बन्ध में तुम्हारा क्या ख्याल है ?

ब्रण्टन आश्चर्य-चकित हो गये। उन्होंने सोचा — इस आदमी को क्या पता कि मैं बङ्गाल गया था और मास्टर महाशय से मिला भी था। उत्तर दिया—"उन्होंने मेरा हृदय जीत लिया है। मैं जब कलकत्ता जाऊँगा तो फिर उनके दर्शन करूँगा। क्या आप उन्हें जानते हैं ? मैं आपकी शुभाकांक्षाएँ उनके पास तक पहुँचा दूँगा।"

योगी ने सिर हिलाया और कहा—"तुम अब मास्टर महाशय को न देख सकोगे। इस समय भी मृत्यु के स्वामी यम उनकी आत्मा को बुला रहे हैं।‡

ब्रण्टन को योगी की इस बात से बड़ा आश्चर्य और दुःख हुआ। आश्चर्य उसकी शक्तियों पर और दुःख मास्टर महाशय के

*मास्टर महाशय श्री रामकृष्ण परमहंस के शिष्यों में थे। उनकी विद्वत्ता, त्याग एवं निष्ठा की बड़ी ख्याति है। उन्होंने जीवन का परम ध्येय चरम शान्ति प्राप्त की थी। ब्रण्टन इसके पूर्व उनसे मिल चुके थे और बड़े प्रभावित हुए थे।

‡पीछे पता चला कि सचमुच उसी समय मास्टर महाशय का देहावसान हुआ था।

देहावसान की बात पर। ब्रण्टन के मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई। उन्होंने योगी से प्रार्थना की कि वह अपने अतीत जीवन की बातें बतायें कि कैसे योगी हुए।

योगी ने कहा—"मुझे धूल में हाथ डालकर मृत अनुभवों की स्मृति जाग्रत करने के लिए मत कहो। मैं न तो भूत और न भविष्य में रहता हूँ। आत्मा की गहराई में ये बातें छाया-सी असत् हैं। मैंने अनुभव से यह ज्ञान प्राप्त किया है।"

ब्रण्टन—लेकिन हम लोगों को, जो समय ('टाइम') की दुनिया में रहते हैं, इसका ध्यान रखना ही पड़ता है।

योगी—समय ? क्या तुम्हें निश्चय है कि ऐसी कोई चीज़ है ?

ब्रण्टन ने उत्तेजित होकर कहा—"यदि समय का अस्तित्व नहीं है, तब तो भूत और भविष्य दोनों इस समय यहाँ होंगे। किन्तु अनुभव का निर्णय इसके विपरीत है।"

योगी—ऐसा ? तुम्हारा मतलब यह है कि तुम्हारा और दुनिया का अनुभव तुमसे ऐसा कहता है।

ब्रण्टन—क्या आप कहना चाहते हैं कि आपका अनुभव इस विषय में कुछ दूसरा है ?

योगी—हाँ, ऐसा ही है।

ब्रण्टन—क्या मैं यह समझूँ कि भविष्य आपके सामने स्पष्ट है ?

योगी—मैं नित्य में निवास करता हूँ। मैं यह जानने का कभी प्रयास नहीं करता कि अगले वर्षों में हमारे ऊपर क्या बीतेगी ?

ब्रण्टन—किन्तु दूसरों के लिए आप कर सकते हैं ?

योगी—हाँ, यदि मैं इच्छा करूँ।

ब्रण्टन—तब आप आगे होनेवाली घटनाओं से लोगों को आगाह कर सकते हैं ?

योगी—केवल आंशिक रूप में। मनुष्यों का जीवन ऐसी सरल गति से नहीं चलता कि प्रत्येक ब्योरा पूर्व-निश्चित हो।

ब्रण्टन—तब क्या आप मुझे मेरे भविष्य की वे बातें बतावेंगे जिन्हें आप जान सकते हैं ?

योगी—तुम ये बातें किस लिए जानना चाहते हो ?···ईश्वर ने भविष्य के ऊपर जो परदा खड़ा किया है वह अकारण नहीं है।

ब्रण्टन—गूढ़ समस्याएँ मेरे मन को अशान्त किये हुए हैं। मैं आपके देश में प्रकाश पाने के लिए आया हूँ। सम्भव है, आप जो कुछ बतायें, उससे मुझे पथ-प्रदर्शन मिले।

योगी—मैं कोई बड़ा पण्डित नहीं हूँ; पर यदि तुम मेरी सलाह मानोगे तो तुम्हारी यात्रा अवश्य सफल होगी। उसी जगह जाओ, जहाँ से तुमने अपना भारत-भ्रमण आरम्भ किया था। और प्रतिपदा के पूर्व ही तुम्हारी अकांक्षा पूर्ण होगी।

ब्रण्टन—क्या आपका मतलब है कि मैं बम्बई लौट जाऊँ ?

योगी—हाँ।

ब्रण्टन—परन्तु मुझे वहाँ अपने शोध में कोई सहायता नहीं मिली।

योगी ने रुक्षता के साथ कहा—"यही तुम्हारा मार्ग है।

जितनी जल्दी हो सके, उसका अनुगमन करो । समय व्यर्थ न खोओ। कल ही बम्बई चले जाओ ।"

ब्रएटन—क्या आप इतना ही बता सकते हैं ?

योगी—और भी ; पर मैंने उसे सोचने का कष्ट नहीं किया। ......आगामी 'equinox' (जिस दिन रात-दिन बराबर होते हैं २१ मार्च और २३ सितम्बर) के पूर्व ही तुम भारत छोड़कर युरोप लौट जाओगे। इस देश से रवाना होने के बाद तुम जोर से बीमार पड़ोगे। पर मृत्यु न होगी। तब भावी अपने को व्यक्त करेगी और तुम आर्यवर्त्त को फिर लौटोगे। तुम हमारे देश की कुल तीन यात्राएँ कर सकोगे। एक ऋषि आज भी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं और तुम उनके साथ अत्यन्त प्राचीन बन्धनों से बँधे हुए हो, इसलिए उनके पास रहने के लिए तुम्हें आना ही पड़ेगा।❀

❀ ❀ ❀ ❀

एक मिश्री जादूगर

ब्रएटन बम्बई के मैजेस्टिक होटल में ठहरे हुए थे। उन दिनों उसी होटल में मिश्र के प्रसिद्ध जादूगर महमूद बे भी ठहरे थे।

❀ ये बातें सच हो चुकी हैं। युरोप का टिकट कटाकर और जहाज में जगह सुरक्षित कराके भी ब्रएटन को फिर अरुणाचल के महर्षि की सेवा में जाना पड़ा। महर्षि का वर्णन पिछले लेख में दिया जा चुका है।

महमूद बे का सम्बन्ध कुछ अदृश्य जीवों के साथ था। उन्हें एक प्रकार की प्रेत-सिद्धि थी।

ब्रण्टन उनसे भी मिले थे।

चाय पीते-पीते ब्रण्टन ने पूछा—"क्या यह सत्य है कि आप में आसाधारण शक्तियाँ हैं?"

महमूद बे—"हाँ, सर्वशक्तिमान अल्लाह ने मुझे ये शक्तियाँ प्रदान की हैं।"

ब्रण्टन चुप। वह उन शक्तियों को देखना चाहते थे पर कहें कैसे? महमूद बे ने जैसे उनके विचार पढ़ लिये हों क्योंकि उन्होंने स्वयं ही पूछा—"आप शायद उन्हें देखने को उत्सुक हैं?"

ब्रण्टन ने सिर हिलाया। महमूद बे ने कहा—अच्छा, पेंसिल और काग़ज हो तो निकालिए। ब्रण्टन ने वैसा ही किया।

महमूद बे बोले—"काग़ज़ पर कोई प्रश्न लिखिए।"

वह ज़रा दूर हटकर खिड़की से लगे छोटे टेबुल के नज़दीक बैठ गये। मुँह फेर कर नीचे सड़क की ओर देखने लगे।

ब्रण्टन—कैसा प्रश्न लिखूँ?

महमूद बे—कोई भी, जो आप चाहें।

ब्रण्टन ने प्रश्न लिखा—"मैं चार वर्ष पहले कहाँ था?" फिर बोले—"लिख लिया।"

महमूद बे—अच्छा, उसे अच्छी तरह मोड़िये और मोड़ कर छोटा-से-छोटा बना डालिये।

ब्रण्टन ने तदनुकूल किया। अब महमूद बे ने ब्रण्टन की

ओर मुँह किया और बोले—"यह टुकड़ा और पेंसिल अच्छी तरह अपने दाहिने हाथ की हथेली में दबा लीजिए।"

वैसा ही किया गया।

अब महमूद बे ने आँखें मूँद लीं, जैसे गहरे ध्यान में मग्न हो गये हों। थोड़ी देर बाद आँखें खोलीं। ब्रण्टन की ओर देखा और शान्तिपूर्वक कहा—"आपने यह प्रश्न किया है कि 'मैं चार वर्ष पहले कहाँ था?"

ब्रण्टन बोले—'आप ठीक कहते हैं' और आश्चर्य से महमूद की ओर देखने लगे।

महमूद—अच्छा, अब वह काग़ज़ का टुकड़ा, जो आपके हाथ में है, खोलिये और देखिये।

ब्रण्टन लिखते हैं—"मैंने खोला तो देखकर आश्चर्य हुआ कि किसी अदृश्य हाथ ने ठीक प्रश्न के नीचे उस नगर का नाम लिख दिया है, जहाँ मैं ४ वर्ष पहले था।······मैं आश्चर्य से देखता रह गया। मैंने दूसरी बार महमूद को दूर भेजकर दूसरा प्रश्न लिखा और उसका भी ठीक उत्तर मिला। काग़ज़-पेंसल मेरी। मैंने अपने पाकेट से निकाली। प्रश्न तत्काल सोचे और लिखे गये। महमूद बे सदा दूर रहे और यह सारा काम दिन के उजाले में हो रहा है। मैंने इन टुकड़ों को महीनों बाद फिर देखा तो वे ही जवाब लिखे थे इसलिए किसी प्रकार के असत्य आभास का कोई प्रमाण नहीं।"

महमूद बे ने अपनी शक्तियों का प्रदर्शन कलकत्ता इत्यादि में भी किया था और लोग उन्हें देखकर चकित रह गये थे।

ब्रएटन के विशेष अनुरोध पर महमूद बे ने अपनी कथा बताते हुए कहा कि किस प्रकार पढ़ने के दिनों में ही उनकी भेंट एक बूढ़े यहूदी से हुई और बहुत दिनों तक उसके साथ रहकर इस विद्या का अध्ययन करके इसमें दक्षता प्राप्त की। महमूद ने कहा—"मैं कुछ दिन सीरिया में भी रहा। वहाँ की पुलिस जब किसी अपराध का पता न लगा सकती, तो मुझसे सहायता लेती थी। मैं अदृश्य शक्तियों की सहायता से अपराध का पता लगाता था। यह सब मैं प्रेतों की सहायता से करता हूँ।......मुझे इन प्रेतात्माओं पर अधिकार स्थापित करने में तीन वर्ष तक कठोर परिश्रम करना पड़ा।......हमारी इन्द्रियों से परे जो अदृश्य जगत् है, उसमें भली-बुरी दोनों प्रकार की प्रेतात्माएँ हैं। मैं केवल भली आत्माओं से काम लेता हूँ। इनमें कुछ ऐसी हैं, जो मानव-जीवन समाप्त कर मृत्यु के बाद वहाँ पहुँची हैं; पर अधिकांश इस जगत् की मूल निवासी हैं जिन्हें जिन्न कहते हैं और जिन्होंने कभी मानव-शरीर ग्रहण नहीं किया। मेरे अधिकार में कुल ३० जिन्न हैं। उनपर अधिकार स्थापित करने के बाद भी मुझे उनको धीरे-धीरे अपने काम में पारंगत करना पड़ा है। मैंने सब को अलग-अलग काम का अभ्यास कराया है।"

ब्रएटन—आप इनको कैसे बुलाते हैं?

महमूद—केवल उनपर ध्यान केन्द्रित करने से ही वे आजाती हैं पर मैं साधारणत- जिसे चाहता हूँ, उसका नाम अरबी में लिख देता हूँ। उसे तुरन्त लाने के लिए इतना काफ़ी है।

: ७ :

तिब्बती योग की चमत्कारपूर्ण साधनाएं

तिब्बत आज भी एक रहस्यों का ही देश है। यद्यपि पिछले २५-३० वर्षों में तिब्बत के सम्बन्ध में दुनिया को थोड़ी-बहुत जानकारी हुई है और कई पुस्तकें भी लिखी गई हैं पर सब मिलाकर दुनिया की इस छत से सभ्य जगत् के औसत पाठकों का कोई सम्बन्ध नहीं है। और जो पुस्तकें लिखी गई हैं वे भी या तो एकाङ्गी हैं या एक अस्पष्ट रहस्यमयता के बोझ से दबी हुई हैं। संसार में यही एक ऐसा देश है जो दुनिया से बिल्कुल अलग है और यहाँ विदेशियों का प्रवेश बिल्कुल निषिद्ध है।

इस देश के सम्बन्ध में मेरी शुरू से बड़ी दिलचस्पी रही है और लगभग १२ वर्ष पहले मैंने इसके विषय में उपलब्ध सम्पूर्ण साहित्य का अध्ययन किया था। तिब्बत के सम्बन्ध में जो साहित्य उपलब्ध है वह मुख्यतः दो प्रकार का है—कुछ साहसिक यात्राओं के वर्णनों से पूर्ण है, कुछ झूठी-सच्ची दन्तकथाओं से भरा हुआ है। पर इसकी धार्मिक एवं आध्यात्मिक साधनाओं के विषय में वैज्ञानिक छान-बीन करने की प्रवृत्ति किसी ग्रन्थ में दिखाई नहीं

देती। सच बात तो यह है कि तिब्बत में प्रचलित बौद्ध धर्म की विभिन्न विकृत शाखाओं, सम्प्रदायों एवं वर्गों के सम्बन्ध में पाश्चात्य लेखकों ने जो भी लिखा है वह अत्यन्त अस्पष्ट, भ्रमोत्पादक और परस्पर-विरोधी है।

उत्तराखण्ड और तिब्बत दोनों अत्यन्त प्राचीन काल से योग-सम्बन्धी साधनाओं के केन्द्र रहे हैं। उत्तराखण्ड में आज भी अनेक श्रेष्ठ योगी और आध्यात्मिक साधक एवं सिद्ध पुरुष मिलते हैं। तिब्बत में, † पद्मसंभव के बाद से तांत्रिकों का जोर बढ़ता ही गया और उसका प्रारंभिक रूप चाहे कितना ही शुद्ध रहा हो पर आज वहाँ अन्धविश्वास, जादू-टोना का प्रचार बहुत बढ़ गया है। शिकम में भी जादूगरों की शक्ति पर आम जनता की बड़ी श्रद्धा है। असाधारण शक्तियों, प्रेतों इत्यादि के भय से जनता प्रायः डरी हुई है। एक समय जिस योग का उद्देश्य आत्म-साक्षात्कार था और जहाँ असाधारण शक्तियों की साधना शुद्ध कल्याण की भावना पर आश्रित थी तहाँ वह आज प्रायः विकृत होकर भय, मूढ़ता, स्वार्थ और जीविकोपार्जन का साधन बन गई है।

पर कीचड़ में जहाँ कीटाणु होते हैं तहाँ कभी-कभी सुन्दर कमल के भी दर्शन होते हैं। इन विकृत सिद्धियों के बीच भी कभी-

---

† पद्मसंभव = तांत्रिक बौद्ध-धर्म के एक विकृत साम्प्रदाय का आचार्य एवं प्रतिष्ठापक। आठवीं शताब्दी में उसने तिब्बत में अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया।

कभी अच्छे योगियों का पता लग जाता है। इस रहस्य-पूर्ण देश में भारत से गई हुई और हमारे द्वारा पूर्णतः विस्मृत कई विद्याएँ आज भी कहीं-कहीं सुरक्षित हैं। बंगाल के प्रसिद्ध योगी काशी-निवासी श्री विशुद्धानन्द इसी तिब्बत से विज्ञान सीखकर आये थे जिसके द्वारा मृतक पक्षियों को जिलाते तथा नाना प्रकार के पदार्थ क्षण भर में पैदा करते लोगों ने उनको आँखों से देखा है। इनके विषय में हम कुछ पहले भी श्री ब्रण्टन के शोध के सिलसिले में लिख आये हैं और आगे स्वतंत्ररूप से फिर लिखेंगे। श्रेष्ठ योगियों की कमी अवश्य है। पर असाधारण शक्ति एवं चमत्कार के—जिन्हें हम निकृष्ट सिद्धि कहेंगे—तो वहाँ अनेक उदाहरण मिलते हैं। अनेक आँखों-देखी घटनाएँ विश्वासनीय यात्रा-वर्णनों में यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं। इनको एकत्र किया जाय तो एक बड़ी पुस्तक बन सकती है पर हम यहाँ एक बहुत विश्वस्त यात्री का ही मुख्यतः ज़िक्र करेंगे।

तिब्बत के लामाओं, पुजारियों एवं जादूगरों के सम्बन्ध में आज तक जो कुछ लिखा गया है, उसमें सबसे विश्वसनीय एवं प्रमाणिक वृत्तान्त श्रीमती एलेक्ज़ेण्ड्रा डेविड-नील का है। श्रीमती नील को हम साधारणतः एक फ्रेंच महिला कह सकते हैं। फ्रेंच उनकी मातृ-भाषा है। उन्होंने तिब्बत, लामा-धर्म एवं बौद्ध-धर्म के विविध अंगों पर १०-१२ पुस्तकें फ्रेंच में लिखी हैं। वे न केवल फ्रेंच की पण्डिता हैं वरन् जर्मन और अँग्रेज़ी पर भी उनका असाधारण अधिकार है और इन दोनों भाषाओं में भी उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखी हैं।

इन पुस्तकों के अनुवाद और संस्करण स्पेनिश, जेक, पोलिश और स्वीड में भी हुए हैं।

मादम डेविड-नील में कई जातियों के रक्त का मिश्रण है। उनके पूर्वज उन फ्रेंच यूजनातों (Huguenots) में से थे जो १८वीं शताब्दी के रोमांचकारी अत्याचारों एवं उत्पीड़नों के बीच भी अपने धर्म एवं विश्वास के प्रति अचल रहे थे। उनमें नार्वीजियन रक्त भी है। इन दो धाराओं की उनके जीवन में प्रधानता है। पहले के कारण धर्म एवं तत्वज्ञान में उनकी असाधारण रुचि और प्रवृत्ति है; दूसरे के कारण उनमें दुर्गम मार्गों एवं प्रदेशों का भ्रमण करने की ओर झुकाव है। उनका अध्ययन काल पेरी में समाप्त हुआ। महायुद्ध के पूर्व कुछ समय तक ब्रसेल्स विश्वविद्यालय में वह अध्यापिका—प्रोफ़ेसर—भी रही हैं। उन्होंने युरोप और उत्तरी अफ्रीका की खूब यात्रा की है पर एशिया को वह अपना घर ही समझती रहीं। जन्म से वह युरोपियन हैं पर रुचि और चुनाव से उनको एशियाई ही कहना चाहिए।

श्रीमती नील ने जीवन के लगभग १५ वर्ष तिब्बत में व्यतीत किये हैं। वह स्वयं बौद्ध हैं और बौद्ध धर्म की विभिन्न शाखाओं और सम्प्रदायों का उनका गहरा अध्ययन है। वह स्वयं लामा धर्म में दीक्षित हो कर लामा की पद-मर्यादा तक पहुँची हैं। वह तिब्बत के प्रत्येक प्रान्त की भाषा में धाराप्रवाह बोल सकती हैं और तिब्बत के श्रेष्ठ धर्मग्रन्थों एवं शास्त्रों की उनको बहुत अधिक जानकारी है।

स्वभावतः उनकी पुस्तकें तिब्बत के सम्बन्ध में बहुत विश्वसनीय हैं। उनमें अन्वेषक की प्रश्न करने और उसका वैज्ञानिक उत्तर प्राप्त करने की तीव्र रुचि है। वह किसी बात को यों ही नहीं मान लेतीं। वह क्यों है और कैसे है, इसे समझने की भी चेष्टा करती हैं। उन पर डेकार्टे (Descartes) और क्लाबर्नार (Claud Bernard) जैसे आध्यात्मिक संदेहवादियों का पर्याप्त प्रभाव है। इसके कारण उनमें वैज्ञानिक अनुसन्धान की प्रवृत्ति है।

मादम नील के सम्बन्ध में इतना मैं इसलिए लिख रहा हूँ कि पाठक समझलें कि वह साधारण यात्रियों की तरह कल्पना के द्वारा गढ़ी हुई बातें नहीं लिखतीं वरन् जो कुछ लिखती हैं अपने दीर्घ-कालिक अध्ययन, अनुभव और अन्वेषण के परिणाम-स्वरूप लिखती हैं।

सैकड़ों मील की दूरी से सम्बन्ध

श्रीमती नील ने अपनी पुस्तकों में तिब्बत की ऐसी अनेक घटनाओं का वर्णन किया है जिनसे प्रकट होता है कि अब भी वहाँ असाधारण शक्तियों की साधना करने वाले लोग पाये जाते हैं। इनमें कुछ सच्चे योगी होते हैं; अधिकांश अपनी शक्तियों का सांसारिक उद्देश्यों, स्वार्थ-साधन, जीवन-निर्वाह तथा दूसरों पर प्रभुत्व और आतंक स्थापित करने के लिए प्रयोग करते हैं। यद्यपि वे इनका उचित और श्रेष्ठ उपयोग नहीं करते हैं पर उनकी शक्ति से यह तो प्रकट होता ही है कि मनुष्य के अन्दर असीम शक्तियाँ भरी हुई हैं। इसलिए हम ऐसी घटनाओं का वर्णन यहाँ करेंगे।

यहाँ यह याद रखना चाहिए कि ये घटनाएँ सुनी हुई नहीं हैं वरन् स्वयं श्रीमती नील के समक्ष घटित हुई हैं।

श्रीमती एलेक्ज़ेण्ड्रा डेविड नील पोडांग में ठहरी हुई थीं। यहाँ रहते हुए बीच-बीच में वह पूर्वी तिब्बत के विभिन्न प्रदेशों की यात्रा किया करती थीं। इन यात्राओं के सिलसिले में वह कई श्रेष्ठ साधकों ('गोमचेनों') के सम्पर्क में आई थीं। इनमें एक को डालिंग गोमचेन के नाम से पुकारा जाता था। तिब्बत में, जैसा कि भारत में भी है, किसी को उसके नाम से बुलाना अशिष्टता समझी जाती है। गोमचेनों को प्रायः लोग उस स्थान के नाम से पुकारते हैं जहाँ वह साधना के लिए रहता है। जैसे सकियांग में रहनेवाले को साधारणतः सकियांग गोमचेन के नाम से पुकारेंगे। इसी प्रकार डालिंग नामक मठ का आचार्य होने के कारण उपर्युक्त गोमचेन को डालिंग गोमचेन के नाम से पुकारा जाता था।

प्रति वर्ष गरमी के दिनों में डालिंग गोमचेन या लामा एक एकान्त पर्वत की चोटी पर चले जाते थे और एक छोटी कुटी में एकान्त साधना करते थे। आवश्यक सामग्री उनके शिष्य वहाँ एकत्र करके रख देते थे क्योंकि फिर ३--४ महीने तक कोई भी व्यक्ति उनके पास जा नहीं सकता था।

जब श्रीमती नील पोडांग में ठहरी हुई थीं तब शिकम के युवराज भी उनके साथ वहीं ठहरे थे। वह अपने राज्य के बौद्ध मठ के प्रधान थे और श्रीमती नील के प्रति प्रारंभ से ही उनका बड़ा आदर-पूर्ण व्यवहार था। वह ज्ञानके अन्वेषण के लिए की जाने

वाली इन यात्राओं में बराबर श्रीमती नील की सहायता कर रहे थे। उनको साधारणत: लोग सिदकियांग तुलकू के नाम से पुकारते थे। इसलिए आगे मैं भी इसी नाम से उनका ज़िक्र करूँगा।

डालिंग लामा बहुत कम बोलते थे पर सिदकियांग तुलकू के द्वारा जीविका का प्रबन्ध होने के कारण वह श्रीमती नील से धार्मिक विषयों पर शंका-समाधान करते रहते थे। एक दिन की बात है कि प्रिंस, श्रीमती नील और डालिंग लामा तीनों पोडाँग के बँगले में बैठे हुए थे। योगियों और असाधारण शक्तिसम्पन्न लोगों के विषय में बातें हो रही थीं। इस बातचीत के सिलसिले में लामा अथवा गोमचेन ने अपने गुरु की असाधारण शक्तियों एवं ज्ञान का वर्णन किया। उनकी बातचीत में गुरु के प्रति हार्दिक सम्मान, श्रद्धा और निष्ठा का भाव फूटा पड़ता था। उनकी बात से प्रिंस सिद-कियांग तुलकू उनके गुरु के विषय में बड़े प्रभावित हुए।

यह प्रिंस सुधारवादी थे और अपने राज्य से अंधविश्वास तथा जादू-टोना दूर करने के लिए उन्होंने बड़ा साहसपूर्ण प्रयत्न किया था। पर उस समय वह किसी निजी समस्या से बड़े चिन्तित थे। एक बरमन राजकुमारी से उनके विवाह की बातचीत चल रही थी। उनकी चिन्ता उसी सम्बन्ध में थी। वह चाहते थे कि कोई सिद्ध ('नालजोरपा'*) मिले तो उससे इस विषय में आदेश

---

*'नालजोरपा' = इसका शब्दिक और असली अर्थ है 'वह व्यक्ति जिसने पूर्ण शान्ति प्राप्त करली है' (जीवन्मुक्त) पर साधारणत: यह उन तपस्वियों के लिए प्रयुक्त होता है जिनमें ऐन्द्रजालिक शक्तियाँ होती हैं।

एवं पथ-प्रदर्शन प्राप्त करें। इसलिए जब उन्होंने गोमचेन से उनके गुरु के विषय में सुना तो मादम नील से अँग्रेज़ी में कहा—"मुझे बड़ा दुःख हुआ कि मैं इस महान् 'नालजोरपा' से नहीं मिल सकता अन्यथा मुझे उनसे अच्छी सलाह प्राप्त होती।"

फिर तिब्बती भाषा में गोमचेन से कहा—"मुझे दुःख है कि आपके गुरु यहाँ नहीं हैं। मैं इस समय ऐसे ही किसी पारदर्शी 'नालजोरपा' की सलाह चाहता हूँ।"

पर प्रिंस ने यह नहीं बताया कि वह क्या पूछना चाहते हैं या उनकी चिन्ता का कारण क्या है।

लामा ने निश्चल शान्ति के साथ पूछा—"क्या मामला गंभीर है?"

प्रिंस—बहुत महत्वपूर्ण है।

लामा—तब संभवतः आपको इच्छित सलाह प्राप्त हो सकती है।

श्रीमती नील लिखती हैं:—"मैंने सोचा कि वह किसी विशेष संदेशवाहक द्वारा पत्र भेजकर सलाह मँगवायेंगे। मैं उनसे कहने वाली ही थी कि बहुत अधिक दूर होने के कारण इसमें काफ़ी वक्त लग जायगा कि उनकी ओर देखकर मैं स्तब्ध रह गई।

"उन्होंने अपनी आँखें बन्द करली थीं और तेज़ी से उनका चेहरा पीला पड़ता जा रहा था। उनकी देह लकड़ा रही थी। मैंने समझा कि एकाएक उनकी तबीयत खराब होगई है इसलिए मैं उनके पास से उठकर जाने ही वाली थी कि प्रिंस ने, जो लामा में

होनेवाले आकस्मिक परिवर्तन को बड़े ध्यान से देख रहे थे, मुझे रोक लिया और बहुत धीरे से कहा—'बैठी रहो। कभी-कभी गोमचेन लोग एकाएक समाधिस्थ हो जाते हैं। किसी को उनको जगाने का प्रयत्न नहीं करना चाहि, क्योंकि इसमें बड़े खतरे हैं और इससे उनकी जान जा सकती है।"

"इसलिए मैं चुपचाप बैठी लामा को देखती रही। उनमें किसी तरह की हरकत नहीं थी। और वह जड़वत् प्रतीत होते थे। मैंने देखा कि धीरे-धीरे उनकी आकृति बदल रही है; उनके चेहरे पर झुर्रियाँ पैदा हो रही हैं और चेहरे पर ऐसा भाव प्रकट हो रहा है जो मैंने उनमें कभी नहीं देखा था। उन्होंने अपनी आँखें खोलीं और प्रिंस आश्चर्य से काँप उठे।

"हम लोग जिस आदमी को देख रहे थे, वह डालिंग के गोमचेन नहीं थे। यह कोई दूसरा ही आदमी था, जिसे हम नहीं जानते थे। बड़ी कठिनाई से इस व्यक्ति ने अपना मुँह खोला और डालिंग गोमचेन से भिन्न वाणी में बोला।

"अशान्त मत हो। इस प्रश्न का सामना करने का अवसर ही तुम्हारे सामने न आयेगा।"

इसके बाद उसने धीरे-धीरे अपनी आँखें बन्द करलीं; फिर उसकी आकृति बदलने लगी और पूर्ववत् डालिंग लामा के रूप में आ गई। कुछ देर बाद डालिंग लामा की समाधि अथवा सुषुप्ति दूर हो गई।

इसके बाद प्रिंस और मादम नील ने कई प्रश्न पूछने चाहे

पर लामा ने उनपर ध्यान न दिया और लड़खड़ाते हुए एकान्त में चले गये। ऐसा मालूम होता था कि थकावट से उनका शरीर चूर हो रहा हो।

मैं पहले कह चुका हूँ कि प्रिंस सुधारक थे और संदेहवादी भी। लामा के जाने के बाद उन्होंने कहा—"इस उत्तर का कोई अर्थ नहीं।"

पर कुछ ही दिनों बाद प्रकट होगया कि उत्तर पूर्णतः सार्थक था।

युवक महाराज की चिन्ता का कारण यह था कि उनका एक लड़की से सम्बन्ध था और उससे एक लड़का भी पैदा हो चुका था। अब उनका विवाह होने जा रहा था पर वह पूर्व लड़की को छोड़ना नहीं चाहते थे। उनको सचमुच दो स्त्रियों की यह समस्या हल करने की ज़रूरत न पड़ी। विवाह के ठीक एक दिन पूर्व अकस्मात् उनकी—महाराज की—मृत्यु हो गई।

इस घटना से प्रकट होता है कि योगी सैकड़ों मील दूर बैठे गुरु अथवा अन्य व्यक्ति से तुरन्त सीधा सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। इतना ही नहीं एक योगी की आत्मा दूसरे के शरीर में प्रविष्ट होकर आवश्यक कार्य कर सकती और बोल सकती है। इस प्रकार दूसरे के शरीर में प्रवेश करने के और भी उदाहरण मिलते हैं। श्री शंकराचार्य ने अपना शरीर एकान्त में छोड़कर राजा के शरीर में प्रवेश किया था। उतने समय में योगी का अपने पूर्व शरीर से भी एक सूक्ष्म सम्बन्ध बना रहता है और वह कार्य होते ही निर्जीव-से पड़े अपने पूर्व शरीर में लौट जाता है।

परन्तु उल्लिखित घटना में कुछ विशेषताएँ और भी हैं। पहली बात यह कि इसमें एक योगी ने दूसरे जीवित योगी के शरीर में प्रवेश किया। दूसरी बात यह कि जिसके शरीर में प्रवेश किया गया उसका रूप भी बदलकर प्रवेश करनेवाले योगी के समान होगया। तीसरी बात यह कि यह सब बहुत थोड़ी देर में बिना किसी पूर्व तैयारी के हो गया।

इन बातों के अतिरिक्त यह निष्कर्ष तो निकलता ही है कि योगी में मौन प्रिंस के मन की बात जान लेने और भविष्य को देख सकने की शक्ति थी।

असाधारण गति की सिद्धि

प्राणायाम-सम्बन्धी एक विशेष पद्धति को तिब्बत में 'लुंग-गोम' कहते हैं। हमारे 'योग' की भाँति इस शब्द का प्रयोग अनेक ऐसी साधनाओं के लिए होता है जिनमें प्राणायाम के साथ मन का केंद्रीकरण किया जाता है। ये क्रियाएँ वस्तुतः आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक हैं पर अब लौकिक शक्ति प्राप्त करने अथवा अन्य साधारण उद्देश्यों से भी की जाती हैं।

ये साधनाएँ हमारे यहाँ की योग-सिद्धियों से मिलती-जुलती हैं। जैसे हमारे यहाँ शरीर को यथेच्छ छोटा-बड़ा बना लेने, एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुँचजाने, आकाश मार्ग से उड़ने इत्यादि की सिद्धियाँ हैं तैसे ही 'लुंग-गोम' के अन्तर्गत भी अनेक सिद्धियाँ हैं। इनमें एक असाधारण गति या फुर्ती प्राप्त करने की है। जो इस साधना को सिद्ध कर लेता है वह सैकड़ों मील का रास्ता थोड़े

समय में तै कर सकता है। तिब्बत के मध्यकालिक प्रसिद्ध साधकों के विषय में उनकी असाधारण गति की अनेक कथाएँ वहाँ प्रचलित हैं।

मिलारेस्पा * की जीवनी में हम पढ़ते हैं कि जिस लामा ने उसे (मिलारेस्पा को) चमत्कारिक साधनाओं की शिक्षा दी थी, उसके घर पर एक 'त्रपा' † रहता था जो घोड़े से भी तेज़ चाल से चल सकता था। स्वयं मिलारेस्पा ने अपनी इस प्रकार की शक्ति का वर्णन किया है और लिखा है कि एक बार मैंने बहुत लम्बा मार्ग कुछ ही दिनों में तै कर लिया। इस साधना के पूर्व इसी को पूरा करने में एक महीना से अधिक समय लग गया था।

इस साधना में असाधारण गति और फुर्ती का ही अभ्यास नहीं किया जाता वरन् शरीर की सहन-शक्ति में भी अत्यधिक वृद्धि की जाती है क्योंकि प्रायः सफल साधक निरन्तर कई दिनों तक—रात को भी—चलते ही जाते हैं, एक क्षण के लिए कहीं नहीं रुकते और गन्तव्यस्थल पर पहुँचकर ही दम लेते हैं।

ऐसे सफल साधकों के दर्शन बहुत ही कम होते हैं। वस्तुतः उनके बारे में सुना तो बहुत कुछ जाता है पर उनके निजी सम्पर्क में आने अथवा यात्रा की अवस्था में उनको देखने का अवसर तिब्बत में भी बहुत ही कम लोगों को मिलता है। श्रीमती अलेक्-

* एक सन्त-कवि जो ग्यारहवीं सदी में हुए थे। वह तिब्बत के अत्यधिक लोकप्रिय सन्तों में हैं और उनके भजनों का बड़ा प्रचार है।

† साधक शिष्य।

ज़ेण्ड्रा डेविड-नील ने ऐसे तीन लुंग-गोम-पा साधकों को, यात्रा की अवस्था में, स्वयं देखा था। वह स्वयं लिखती हैं—"मैं इसके लिए अपने को बड़ी भाग्यवान समझती हूँ क्योंकि 'लुंग गोम' का कुछ न कुछ अभ्यास तो बहुत से धर्माचार्य एवं साधकगण करते हैं पर यह बात सन्देह से परे है कि इनमें से बहुत कम को अभीप्सित फल की प्राप्ति होती है। असल में सच्चे 'लुं-गोम-पा' बहुत ही थोड़े होंगे।"

"पहले लुंग-गोम-पा से मेरी भेंट उत्तरी तिब्बत के छंग-थंग* में हुई थी।

"दिन का तीसरा पहर बीत चला था। मैं, योंगदेन† और हमारे साथ के सेवक सब एक ऊँची चौरस भूमि को आहिस्ता-आहिस्ता घोड़ों पर पार कर रहे थे। इतने में मैंने सामने की तरफ़ दूर कोई काली चीज़ चलती देखी। दूरबीन से देखने पर मालूम हुआ कि वह आदमी है। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि उस उजाड़ प्रान्त में किसी प्राणी से भेंट होना एक घटना ही होती है। पिछले दस दिनों से हम लोगों ने एक आदमी के भी दर्शन नहीं

---

* एक विस्तृत ऊँचा जंगली पठार जिसमें झाड़ियों की बहुतायत है। इसमें कहीं-कहीं तम्बुओं में कुछ ख़ानाबदोश रहते हैं। 'छङ्ग-थङ्ग' का शाब्दिक अर्थ है 'उत्तरी मैदान', पर यह शब्द उत्तरी तिब्बत में जंगली पठारों की तरह अन्य जंगली मैदानों के लिए भी प्रयुक्त होता है।

† योंगदेन = श्रीमती नील का गोद लिया पुत्र, जो बाद में स्वयं बौद्ध लामा हुआ।

किये थे। फिर इस विस्तृत एकान्त में कोई आदमी अकेले और पैदल नहीं चलता। तब यह आश्चर्यजनक यात्री कौन है ?

"मेरे सेवकों में से एक ने कहा कि कदाचित यह आदमी सौदागरों के किसी ऐसे क़ाफ़ले में रहा होगा जिसे डाकुओं ने लूट-कर तितर-बितर कर दिया हो और यह आदमी जान लेकर भागा हो और इस रेगिस्तान में भटक गया हो। यह बिल्कुल संभव था। मैंने सोचा कि यदि यही बात होगी तो मैं इस आदमी को अपने साथ ले चलूँगी और उसे किसी बस्ती में अथवा मेरे रास्ते में पड़ने वाले किसी स्थान पर वह जाना चाहेगा तो वहाँ पहुँचा दूँगी।

लेकिन ज्यों-ज्यों मैं दूरबीन से देखने लगी, मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह अद्भुत ढंग से चल रहा है और उसकी चाल में बहुत अधिक तेज़ी है। यद्यपि इतनी दूर से मेरे अदमियों को सिर्फ़ एक काली चीज़ बढ़ती दिखाई देती थी पर उन्होंने भी लक्ष्य किया कि उसमें असाधारण गति है और बहुत जल्दी निकट चली आ रही है। मैंने उनको दूरबीन देखने के लिए दी। देखने के बाद उनमें से एक बोला।

"लामा लुंग-गोम-छीग दा।"* (अर्थात् "यह तो लामा लुंग-गोम-पा के समान दिखाई देता है।")

'लामा लुंग-गोम-पा' के इन शब्दों ने तुरन्त मेरे दिल के अन्दर दिलचस्पी पैदा कर दी। मैंने ऐसे आदमियों द्वारा किये जानेवाले करामातों के विषय में बहुत कुछ सुना था और इनके शिक्षण

* लिखा यों जाता है—"ब्लामा रलंग स्गोम पा छिग ह्द्रा।"

एवं साधना के सिद्धान्तों से वाक़िफ़ थी। मैंने स्वयं भी कुछ दिन इसका अभ्यास किया था किन्तु लुंग-गोम के किसी आचार्य को इन लम्बी यात्राओं के बीच स्वयं चलते हुए मैंने कभी न देखा था। मैंने सोचा, क्या सचमुच इनको देखने का मेरा भाग्य है ?

वह आदमी हमारी ओर बढ़ता चला आरहा था और उसकी आश्चर्यजनक चाल स्पष्ट होती जारही थी। मैंने सोचा कि यदि वह सचमुच लुंग-गोम-पा है तो क्या करना चाहिए ? मैं नज़दीक से उसका परीक्षण करना चाहती थी, मैं उससे बात करना, उससे कुछ प्रश्न पूछना और उसका फोटो लेना चाहती थी। मैं न जाने क्या-क्या चाहती थी। पर मेरे ऐसी इच्छा प्रकट करने पर वह व्यक्ति, जिसने उसे लुंग-गोम-पा के रूप में पहचाना था, बोला—

"पूज्ये! लामा को आप न रोकेंगी, न उससे कुछ बोलेंगी। ऐसा करने से उसकी मृत्यु निश्चित है। यात्रा करते समय इन लामाओं का ध्यान भंग नहीं होना चाहिए। यदि वह मानसिक मंत्र-पाठ बन्द करदें तो उनके अन्दर से देवता निकल जाता है और नियत समय से पूर्व निकलने पर वह इन्हें इतनी ज़ोर का धक्का देता है कि वे मर जाते हैं।"

इस चेतावनी में अन्धविश्वास स्पष्ट था पर इसकी उपेक्षा न की जा सकती थी क्योंकि मैं इस साधना के विषय में जो कुछ जानती थी उससे इतना स्पष्ट था कि एसे आदमी एक प्रकार की सुषुप्ति अथवा योग-निद्रा में चलते हैं। इसलिए अकस्मात् जगा दिये जाने से यात्री के स्नायु-जाल पर अवश्य धक्का पहुँचेगा, यद्यपि

मुझे सन्देह है कि इससे उसकी मृत्यु हो सकती है। इस प्रकार के आकस्मिक धक्के से उसे किस सीमा तक हानि पहुँच सकती है, इसका अनुमान मैं न लगा सकती थी और लामा पर निर्दय प्रयोग करने की मेरी इच्छा भी न थी। अन्य कारण भी मेरी उत्कण्ठा की तृप्ति में बाधक थे। तिब्बत-वासियों ने मुझे एक महिला-लामा के रूप में स्वीकार किया था; वे जानते थे कि मैं बौद्ध हूँ और बुद्ध के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में मेरी दार्शनिक धारणा तथा लामीय बौद्धधर्म के बीच क्या भेद है, इसे समझ न सकते थे। साधारण तिब्बती लोग इस बात पर बिल्कुल ध्यान नहीं देते कि बुद्धधर्म शब्द में अनेक सम्प्रदायों और विचारों का समावेश है। ऐसी अवस्था में अपनी धार्मिक वेश-भूषा के कारण जो विश्वास आदर और घनिष्टता मुझे प्राप्त थी उसे सुरक्षित रखने के लिए मुझे, धार्मिक विषयों में ख़ास तौर से, तिब्बती प्रथाओं का पालन करना आवश्यक था।......इसलिए इस आश्चर्यजनक यात्री को रोकने के सम्बन्ध में मुझे अपनी इच्छा पर नियंत्रण रखना पड़ा।

इस समय तक वह हमारे बहुत पास आ गया था। उसके शांत निरुद्वेग चेहरे और उसकी पूर्णतः खुली आँखों को मैं स्पष्ट देख रही थी। ये आँखें शून्य में वहीं ऊँचे स्थान पर स्थित किसी अदृश्य एवं दूरस्थ पदार्थ पर दृढ़तापूर्वक लगी हुई थीं। यह आदमी दौड़ता नहीं था। ऐसा मालूम होता था मानों वह ज़मीन से ऊपर कूदता हुआ चला जा रहा हो। उसमें गेंद का लचीलापन और हल्कापन मालूम पड़ता था। जैसे ज़मीन से स्पर्श होते ही

गेंद ऊपर उठती है वैसे ही पाँव से प्रत्येक बार पृथ्वी का स्पर्श होते ही वह जैसे ऊपर उछलता था। उसके प्रत्येक पग में घड़ी के पेंडुलम की भांति नियमितता थी। वह मठनिवासियों के वेश में था। बायें हाथ में वह वस्त्र पकड़े था—यहाँ तक कि वह हाथ क़रीब-क़रीब आधा उसके नीचे छिपा था और दाहिने हाथ में 'फुर्बा' (अभिमन्त्रित छुरा वा कटारी) था। प्रत्येक पग पर उस का दाहिना हाथ ज़रा आगे बढ़ता था जैसे कोई छड़ी पर झुक रहा है या जैसे 'फुर्बा', जिसकी नोक ज़मीन से बहुत ऊपर थी, ज़मीन को स्पर्श कर रहा हो और एक सहारे का काम दे रहा हो।

जब वह हमारे सामने से निकला तो मेरे सेवकों ने घोड़ों से उतर कर ज़मीन पर दण्डवत् किया पर वह सीधा अपने रास्ते चला गया और उसे हमारी उपस्थिति का भान भी नहीं हुआ।

पर जब वह कुछ दूर निकल गया तो मुझे पछतावा हुआ कि मैंने उसे क्यों रोक कर नहीं देखा।······मैंने तुरन्त नौकरों को घोड़ों पर चढ़कर लामा का पीछा करने की आज्ञा दी। मैं और मेरा पुत्र दोनों बराबर घोड़े पर पीछा करते हुए दूरबीनों से लामा को देख रहे थे।······वह उसी नियमितता के साथ उछलता चला जा रहा था। हम लोगों ने लगभग दो मील तक उसका पीछा किया। इसके आगे उसने एक ऊँचे करार को पार किया और अदृश्य होगया। घोड़े से उस रास्ते जाना कठिन था इसलिए हमको लौटना पड़ा।

लुंग-गोम-पा से भेंट होने के बाद चौथे दिन सुबह हम लोग

थेबगियाई नामक क्षेत्र में पहुँचे जहाँ डोकपा❀ लोगों के अनेक तम्बू बिखरे हुए लगे थे। मैंने इन लोगों से लुंग-गोम-पा से अपनी भेंट की कहानी सुनाई। इनमें से कुछ ने लामा को उसके पहले दिन शाम के वक्त देखा था जब हम लोगों ने उसे देखा। इससे प्रकट होता है कि वह तेज़ चाल से रात दिन चलता रहा था।

❀ ❀ ❀ ❀

सुदूर पश्चिम ज़ेतशुनीस में मुझे एक दूसरे लुंग-गोम-पा के दर्शनों का अवसर प्राप्त हुआ। परन्तु इस बार मैंने उसे चलते हुए नहीं देखा।

हम लोग एक जङ्गल के बीच से जा रहे थे। मैं और मेरा पुत्र योंगदेन दोनों नौकरों से कुछ आगे निकल आये थे। रास्ते की मोड़ पर हम लोगों को एक नंगे आदमी के, जिसके शरीर में चारों ओर लोहे की साँकलें बँधी हुई थीं, दर्शन हुए।

वह एक चट्टान पर बैठा हुआ था और अपने ध्यान में इतना डूबा था कि हम लोगों के निकट आने का शब्द उसने नहीं सुना। कुछ देर बाद जब अकस्मात् उसे हम लोगों की उपस्थिति का ज्ञान हुआ तो एक क्षण हम लोगों की तरफ़ देखने के बाद वह असाधारण गति से उछलकर, हिरन की भाँति, कहीं घने जङ्गल में चला गया। कुछ देर तक तो उसकी साँकलों की आवाज़ सुनाई देती रही—बाद में कम होते-होते बिल्कुल मिट गई।

❀डोकपा—इसका अर्थ 'एकान्तवासी' है पर यह शब्द विशेषतः चरवाहों के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

योंगदेन ने मुझसे कहा—"यह आदमी लुंग-गोम-पा है। मैं इसके जैसे एक आदमी को पहले भी देख चुका हूँ। ये लोग साँकलें इसलिए पहनते हैं कि शरीर भारी हो जाय क्योंकि लुंग-गोम के अभ्यास से इनके शरीर इतने हलके होजाते हैं कि सदा उनके हवा में उड़ जाने का ख़तरा रहता है।"

इस साधना में कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। वायु और अग्नि के उचित नियंत्रण से आकाश में उड़ना भारतीय योग की प्रसिद्ध साधना है। मिट्टी और जल का अंश शरीर में से बहुत घटा दिया जाता है और अग्नि एवं वायु के अंश की यथेच्छ वृद्धि करली जाती है। इससे मनुष्य में अत्यन्त हलकापन आजाता है और वह हवा में उड़ सकता है। भारतीय योगी मानते हैं कि उपयुक्त साधना द्वारा सैकड़ों मील प्रति घण्टे की गति प्राप्त की जा सकती है।

इस दृष्टि से लुंग-गोम-पा की यह साधना बहुत मामूली है। पर चूँकि इसकी शिक्षा तिब्बत के कई मठों में दी जाती है इसलिए इसका परीक्षण एवं दर्शन सरल है। त्शांग प्रांत का शालू गोम्पा इसके लिए आज भी काफ़ी मशहूर है।

इसकी शिक्षा किसी अनुभवी गुरु से लेनी पड़ती है। पहले कई वर्ष तक नाना प्रकार के प्राणायाम की शिक्षा दी जाती है। जब शरीर के अन्दर वायु पर काफ़ी नियंत्रण स्थापित हो जाता है तब दौड़ने का अभ्यास कराया जाता है। इसके लिये गुरु एक गोपनीय मंत्र शिष्य को देता है। इस मंत्र का सस्वर मानसिक

पाठ करते हुए उसमें अपने विचारों को केंद्रित करना सिखाया जाता है। चलते समय श्वास लेने और निकालने की क्रिया के साथ इस मंत्र के मानसिक गायन का सामञ्जस्य होना चाहिए और प्रत्येक पग मंत्र एवं प्राणायाम के सम पर पड़ना चाहिए, यात्रीको न तो कुछ बोलना चाहिए, न इधर-उधर देखना चाहिए। उसको अपनी दृष्टि किसी एक दूरस्थ पदार्थ में केंद्रित रखनी चाहिए। लम्बे-चौड़े रेगिस्तानी मैदान, समतल भूमि और संध्या का समय—विशेषतः तारों से जगमगाती रात प्रारंभिक साधकों के लिए उपयुक्त स्थान एवं समय माना जाता है। दोपहर, तीसरा पहर, जङ्गल,घाटियाँ और पहाड़ इत्यादि को इस विद्या के आचार्य ही अतिक्रम कर सकते हैं। अधिकांश साधकों को अपनी दृष्टि किसी एक तारे पर केन्द्रित करने को कहा जाता है। आरंभिक साधक उस तारे के डूबने पर रुक जाते हैं पर जब गहरी सुषुप्ति या योगनिद्रा का अभ्यास हो जाता है तो तारे के डूब जाने पर भी साधक यात्री की आँखें उसमें केंद्रित ही रहती हैं। उसका ध्यान नहीं टूटता। बहुत दिनों के अभ्यास के बाद साधक के पाँव ज़मीन को स्पर्श भी नहीं करते; वह वायु के ऊपर मानो तैरता चला जाता है। उस योगनिद्रा में शरीर के बोझ का भान बिल्कुल छूट जाता है।

'माहेकेतांग' नाम के अधिकांश साधक दूसरी विधियों से इसका अभ्यास करते हैं। वे हमारे यहाँ की लघिमा सिद्धि का भी कुछ अभ्यास करते हैं। साधारण शिष्यों को प्रारम्भ में एक

गद्दे पर आसन मारकर बैठना पड़ता है। वह धीरे-धीरे देर तक नाक से वायु अन्दर खींचता है, मानो वह शरीर को हवा से भर देना चाहता हो। फिर वायु को अन्दर रोक कर आसन लगाये हुए ही वह ऊपर उछलने का अभ्यास करता है। इसमें वह हाथ का कोई सहारा नहीं लेता। वह गद्दे पर गिरता है और फिर उछलता है। इस प्रकार वह अपना अभ्यास प्रतिदिन जारी रखता है। कुछ लोग इस तरह अभ्यास करते-करते बहुत ऊँचा उछल सकते हैं। थोड़ी स्त्रियाँ भी इसका अभ्यास करती हैं।

इस विद्या के जानने वालों का कहना है कि वर्षों के अभ्यास से शरीर बहुत हल्का—प्रायः बिना किसी बोझ के—होजाता है। कहातो यहाँतक जाता है कि अभ्यास से ऐसी निपुणता प्राप्त करने वाले भी हैं जो जौ के पौधे पर बैठ सकते हैं और इसके पौधे की डंडी जरा भी नहीं झुकती !

इसके साथ ही लघिमा की भी परीक्षा ली जाती है। ज़मीन में एक गड्ढा खोदा जाता है। इसकी गहराई उतनी ही होती है जितनी परीक्षार्थी के शरीर की ऊँचाई या लम्बाई होती है। इस गड्ढे पर, ज़मीन की सतह के ऊपर, एक गुम्बद बनाया जाता है, इसकी ऊँचाई भी आदमी के शरीर की ऊँचाई के बराबर होती है, इस गुम्बद के कलश में ऊपर थोड़ी-सी खुली जगह, एक बड़े छिद्र की भाँति, होती है। इस तरह गड्ढे के अन्दर आसन मारकर बैठे हुए आदमी और इस कलश के छिद्र के बीच का अन्तर उस आदमी के शरीर की लम्बाई का दूना होता है। जैसे यदि आदमी

की ऊँचाई ५ फुट ५ इञ्च है तो यह अन्तर १० फुट १० इञ्च होगा।

परीक्षा में सफलता की कसौटी यह है कि आदमी आसन मारकर बैठे हुए उछले और उस छिद्र में से बाहर हो जाय।

कुछ माहेकेतांग साधकों की परीक्षा दूसरी तरह से भी ली जाती है। उसमें उछलना नहीं पड़ता; पर छिद्र से निकल आने की कसौटी उनके लिए भी है।

एक अँधेरे एकान्त स्थान में तीन वर्ष तक अभ्यास करने के पश्चात् जो साधक परीक्षा में सफल होने की शक्ति का अनुभव करते हैं, शालू गोम्पा जाते हैं। वहाँ क़ब्र के समान बनी झोंपड़ियों में, जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है, उनको प्रविष्ट कराया जाता है। इसमें और उपर्लिखित गुम्बद वाली परीक्षा में अन्तर इतना ही है कि उसमें निकलने का छिद्र ऊपर सिरे पर होता है और इसमें दीवार में बगल में होता है। इससे परीक्षार्थी को उछलना नहीं पड़ता। गड्ढे के पास एक स्टूल रहता है। सात दिन तक गड्ढे में रहने के बाद वह इस स्टूल के सहारे गड्ढे के ऊपर आता है। अन्तिम परीक्षा में सफल होने के लिए उसे दीवारवाले छिद्र से बाहर निकलना चाहिए। यह छिद्र मनुष्य की तर्जनी अँगुली और अँगूठे से बननेवाले गोलक के बराबर होता है।

प्रतिभावान लामा इन सिद्धियों में अपना समय खोने से इन्कार करते हैं। उनका आचरण बुद्ध के सम्बन्ध में कही जाने वाली एक कथा के आधार पर है।

कहते हैं, एक समय बुद्ध अपने कुछ शिष्यों के साथ यात्रा कर रहे थे। एक जंगल के बीच एक कुटी में उनको एक जीर्ण शरीर योगी मिले।

"बुद्ध ठहर गये। उन्होंने योगी से पूछा कि तुम यहाँ कितने दिन से तपस्या कर रहे हो?

योगी ने उत्तर दिया—पच्चीस वर्ष से।

बुद्ध ने पूछा—"इस लम्बी एवं कष्टपूर्ण तपस्या से तुमने क्या शक्ति प्राप्त की है?"

योगी ने कहा—"मैं किसी नदी को उसके जल पर खड़े-खड़े चलकर पार कर सकता हूँ।"

बुद्ध बोले—"मेरे भाई! क्या सचमुच तुमने इतने वर्ष इसी ज़रा-सी बात के लिए व्यतीत कर दिये? नाविक तुमको चन्द पैसों में उस पार ले जायगा।"

❋ ❋ ❋ ❋

बर्फ़ के बीच शरीर को गर्म रखने की साधना

पहाड़ों की चोटियों पर बर्फ़ से घिरी हुई कुटियों में सरदी के दिन बिताना एक कठिन काम है पर अनेक तिब्बती साधक और तपस्वी ११००० से लेकर १८००० फुट तक की ऊँची चोटियों पर बर्फ़ के बीच, शिशिर ऋतु बिताते हैं। उनके शरीर पर पतला कपड़ा होता है पर बहुतेरे ऐसे भी होते हैं जो बिल्कुल नङ्गा रहते हैं पर उनका शरीर जमजाने की बात तो दूर रही, उनको किसी प्रकार की हानि नहीं होती—न कोई कष्ट प्रतीत होता है। कहते हैं, 'तूमों'

(लिखा जाता है 'ग्तूमो') पर नियन्त्रण स्थापित करने के कारण ही ये लोग इस प्रकार रह सकते हैं।

'तूमो' शब्द का साधारण अर्थ ताप, गरमी है पर तिब्बती भाषा में इसका प्रयोग साधारण ताप या गरमी के लिए नहीं किया जाता। यह तिब्बती योग विद्या का शब्द है जो विशेष साधना से उत्पन्न आन्तरिक ताप के लिए प्रयुक्त होता है।

गुप्त विद्याओं के आचार्य 'तूमो' के भी कई भेद करते हैं: प्रकाश्य 'तूमो' जो अद्भुत आनन्द के उद्वेग में साधक में स्वतः उत्पन्न होता है और उसे 'देवताओं के मुलायम, गरम परिच्छद' में ढक लेता है; गोप्य 'तूमो' जो साधक को हिमाच्छादित पहाड़ों पर गरम और सूखा रखता है; गुह्य अथवा रहस्यात्मक 'तूमो'—इसे केवल अलंकारिक संकेत में ही ताप कह सकते हैं क्योंकि वस्तुतः यह समाधिस्थ होकर इसी दुनिया में 'स्वर्गीय आनन्द' की अनुभूति का साधन है।

गुप्त विद्याओं में 'तूमो' शब्द का प्रयोग उस सूक्ष्म ताप के लिए भी होता है जो वीर्य को गरमी प्रदान करता और इतनी स्फूर्ति देता है कि वह 'त्सस' (रक्तवाहिनी, नाड़ी और ज्ञानतंतु के समष्टिगत अर्थ में यह शब्द प्रयुक्त होता है) के द्वारा समग्र शरीर में व्याप्त हो जाता है।

पर स्वतंत्र विचार के विद्वान ऐसा नहीं मानते। उनका कहना है कि 'तूमो' की साधनाओं के द्वारा साधक अपने शरीर को उत्पादक शक्ति से परिपूर्ण कर सकता है किन्तु यह स्थूल भौतिक पदार्थ

नहीं है वरन् सूक्ष्म अदृश्य शक्ति ('शुग्स') है जिससे मानसिक सृष्टि (Psychic creations) ही संभव है।

जो भी हो, साधकों में भी बहुत ही कम लोग इन कई तरह के 'तूमो' से परिचित हैं परन्तु उस 'तूमो' को तिब्बत में काफ़ी लोग जानते हैं जो हिमाच्छादित पर्वत श्रृङ्गों पर भी साधकों को गरम और जीवित रखता है पर जिस विधि से वह रहस्यमय गर्मी उत्पन्न की जाती है उसे बहुत थोड़े लोग जानते हैं। जो आचार्य इसकी शिक्षा देते हैं वह गुप्त रूप से ही उसे सिखाते हैं और उनकी घोषणा है कि सुनी-सुनाई बातों के आधार पर इसकी साधना करने से कोई परिणाम नहीं निकल सकता। जैसे हमारे यहाँ हठयोगी की दीक्षा किसी अच्छे और अनुभवी योगी से ही ली जा सकती है वैसे ही इस प्रकार 'तूमो'-साधना की दीक्षा भी किसी अनुभवी आचार्य से ही लेनी चाहिए।

दूसरी बात यह है कि केवल अधिकारी व्यक्ति ही उसकी दीक्षा प्राप्त कर सकते हैं। इस दीक्षा के लिए आवश्यक है कि साधक प्राणायाम-सम्बन्धी विविध साधनाओं में दक्ष हो; उसमें अपने ध्यान को एकाग्र कर लेने की पूर्ण शक्ति हो और कम-से-कम भाव समाधि की उस अवस्था को प्राप्त करने का उसे अभ्यास हो जब विचारों के सूक्ष्म रूप का दर्शन किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि उसे उपयुक्त और अधिकारी तथा शक्तिसम्पन्न गुरु से 'अंगकुर'† प्राप्त हो चुका हो।

† अंगकुर = शक्ति देना। एक दीक्षा, जिसके द्वारा गुरु अपने शिष्य में एक विशेष प्रकार की शक्ति का आवाहन करता है।

काफ़ी वक्त तक उम्मीदवारी करने के बाद ही 'तूमो' की दीक्षा मिलती है। इस उम्मीदवारी और प्रतीक्षा से आदमी की लगन और निष्ठा की परीक्षा हो जाती है।

'तूमो' की दीक्षा लेने के बाद आदमी को 'फर' और ऊनी कपड़ों का सर्वथा त्याग कर देना पड़ता है और आग से शरीर के लिए गरमी प्राप्त करने का उसके लिए निषेध है।

कुछ समय तक गुरु के निकट निरीक्षण में अभ्यास करने के बाद, शिष्य ऊँचे पहाड़ों में किसी बिल्कुल एकान्त स्थान पर चला जाता है। साधारणतः ऐसे पहाड़ों की ऊँचाई दस हज़ार फुट से अधिक होती है। 'तूमो' के आचार्यों का कहना है कि शिक्षण का अभ्यास कभी किसी मकान के अन्दर अथवा बस्तियों के समीप नहीं करना चाहिए। उनका विश्वास है कि धुएँ, गन्ध इत्यादि से विकृत वायु तथा अन्य लोगों के मनोभावों के प्रभाव से साधक को सफलतापूर्वक अभ्यास करने में कठिनाई पड़ती है और कभी-कभी उसको हानि भी पहुँचती है। एकान्त स्थान में बस जाने पर शिष्य के लिए सिवाय गुरु के और किसी को देखने की मनाई है। गुरु बीच-बीच में जाकर देखता रहता है कि अभ्यास-क्रम ठीक चल रहा है या नहीं। कभी-कभी सुविधानुसार शिष्य बीच-बीच में गुरु की कुटी में जाकर पथ-प्रदर्शन प्राप्त कर सकता है।

शिष्य को अपनी शिक्षा प्रतिदिन उषःकाल के पूर्व आरम्भ करनी पड़ती है। सूर्योदय के पूर्व 'तूमो'-सम्बन्धी विशेष साधना समाप्त हो जानी चाहिए, क्योंकि इस समय उसको एक वा अधिक ध्यान

करने पड़ते हैं। सारा अभ्यास खुली जगह में करना पड़ता है और साधक को या तो पूर्णतः नंगा रहना पड़ता है अथवा एक सूती वस्त्र पहनना पड़ता है।

आरम्भिक साधकों को चटाई या लकड़ी के स्टूल पर भी बैठ कर अभ्यास करने की आज्ञा देदी जाती है पर आगे बढ़े हुए शिष्य खुली ज़मीन पर बैठते हैं। जिन्होंने बहुत अधिक प्रगति करली है वे बर्फ़ पर अथवा किसी सरोवर वा झरने के जमे हुए पानी या हिम पर बैठकर अभ्यास करते हैं। शिष्यों को अभ्यास के पूर्व कुछ नाश्ता करने, यहाँ तक कि कोई चीज़ पीने—विशेषतः चाय इत्यादि गरम चीजें पीने की सख़्त मनाई है।

अभ्यास में दो आसन प्रचलित हैं। या तो पद्मासन लगाकर बैठना चाहिए अथवा पाश्चात्य ढंग से बैठने की अवस्था में दोनों हाथों की हथेलियों को दोनों घुटनों पर रखना चाहिए। इस में तर्जनी के बाद की दोनों अंगुलियाँ हथेली के नीचे मुड़ी हुई दबी रहती है; बाकी आगे की तरफ़ फैली रहती हैं।

पहले कई प्रकार के प्राणायाम किये जाते हैं जिनका उद्देश्य वायुमार्ग को स्वच्छ कर देना है। इसके पश्चात् अहंकार, क्रोध, घृणा, लोभ, आलस्य, अविवेक इत्यादि दुर्गुण प्राणायाम की क्रिया में वायु-निर्गमन के लय के साथ मन से दूर कर दिये जाते हैं। इसी प्रकार सन्त-पुरुषों के आशीर्वाद, बुद्धत्व, पंच बोध तथा संसार के श्रेष्ठ गुणों को अन्दर श्वास लेजाते समय खींचने और उन्हें अपने में मिलाने का प्रबल मानसिक प्रयत्न करना पड़ता

है। अब चित्त को शांत और स्थिर करके सम्पूर्ण चिन्ता और विक्षोभ को भूलकर कल्पना करनी पड़ती है कि नाभि के पास शरीर में एक स्वर्ण-कमल है। इस कमल में सूर्य की भांति प्रकाशमान 'राम' शब्द है। 'राम' शब्द के ऊपर 'मा' शब्द है। इस 'मा' शब्द से दोरजी नालजोरमा (एक देवी) निकल रही हैं।

इन रहस्यमय शब्दों को 'बीज' कहते हैं। इनको केवल लिखित शब्द या अक्षर ही नहीं समझना चाहिए, न इनको वस्तुओं का प्रतीक मान लेना चाहिए; इनको असीम शक्ति से पूर्ण सीधे खड़े जीवित रूप में देखना और अनुभव करना चाहिए। उदाहरण के रूप में 'राम' अग्नि का दार्शनिक नाम नहीं है वरन् अग्नि का बीज है। हम हिन्दुओं में भी 'बीज मंत्रों' के शुद्ध पाठ एवं उच्चार पर बहुत ज़ोर दिया जाता है क्योंकि हमारा विचार है कि उनकी शक्ति उनके स्वर, शब्द एवं ध्वनि में है। यह ध्वनि रचनात्मक है—वह उत्पादिका शक्ति से पूर्ण है। तिब्बती योग विद्या के अनेक अचार्यों का कहना है कि 'राम' का शुद्ध उच्चारण करने से अग्नि पैदा हो सकती है। किन्तु तिब्बत में इन शब्दों का प्रयोग प्रायः ध्वनि के रूप में नहीं किया जाता बल्कि तत्त्व-रूप में या देव-रूप में किया जाता है। जो योगी 'राम' शब्द को अग्नि-बीज रूप में अनुभव करता है और इस शब्द के आत्मगत प्रतिरूप का मानसिक उपयोग कर लेने की क्रिया जिसे मालूम है वह ध्यान अथवा मन के केंद्रीकरण मात्र से किसी भी वस्तु को जला सकता अथवा बिना ईंधन के ज्वाला उत्पन्न कर सकता है।

हाँ, तो ध्यान में 'या' शब्द से निकलती हुई दोरजी नालजोरमा की कल्पना करने के पश्चात् साधक को अनुभव करना चाहिए कि वह स्वयं दोरजी नालजोरमा है। इस प्रकार जब साधक स्वयं दोरजी नालजोरमा बन जाता है तब वह नाभि में 'अ' अक्षर की और अपने सिर पर 'हा' (तिब्बती वर्णमाला का एक अक्षर) की कल्पना करता है। धीर और गंभीर श्वास-ग्रहण भाथी अथवा धौंकनी का काम करता है और एक छोटे पर प्रज्वलित अग्निखण्ड को उत्पन्न कर देता है। प्रत्येक श्वास के साथ वायु पेट में जाकर नाभि के ऊपर के भाग को स्पर्श करती हुई मालूम होती है और ज्वाला बढ़ती जाती है।

'तूमो' की अन्य प्रकार की साधनाओं में कल्पना की जाती है कि 'हा' से तैल-विंदु झर-झर कर 'अ' में स्थित अग्नि में पड़ रहे हैं और इस प्रकार उसे प्रज्वलित किये हुए हैं।

अब प्रत्येक बार श्वास लेने के पश्चात् श्वास को अन्दर रोक रखने का प्रयत्न किया जाता है। धीरे-धीरे श्वास को रोक रखने के समय में वृद्धि की जाती है। अब वह अग्नि 'उमा' नामक शिरा के द्वारा ऊपर उठती है।

यह स्पष्ट है कि तिब्बत की योग विद्या का आधार भारतीय योग ही है। और नाड़ी-चक्र का प्रयोग भारत से ही लिया गया है। नाड़ी को तिब्बती भाषा में 'त्सा' कहते हैं। तिब्बती योग में तीन नाड़ियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग लेती हैं। इनके नाम 'रोमा', 'क्यांगमा' और 'उमा' हैं।

इन नाड़ियों को साधारण रक्त से भरी नाड़ियों के अर्थ में नहीं लेना चाहिए। ये सूक्ष्म तन्तु हैं जो आत्मिकशक्ति (Psychic energy) की तरंगें शरीर के विविध भागों में पहुँचाते हैं। वैसे अगणित 'त्सा' हैं पर उपर्युक्त तीन अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

इस प्रकार साधना चलती है। इस साधना की दस श्रेणियाँ हैं। ध्यान में बराबर एक गुप्त मंत्र का पाठ करना होता है और चित्त उस अग्नि तथा उससे फैलती हुई गरमी में पूर्णतः एकाग्र कर लेना पड़ता है।

संक्षेप में उपर्युक्त दस श्रेणियाँ ये हैं:—

१—केंद्रीय 'त्सा' वा नाड़ी में 'उमा' की कल्पना की जाती है और उसका सूक्ष्म दर्शन किया जाता है। कल्पना और दर्शन यह है कि नाड़ी अत्यन्त सूक्ष्म, बाल-जैसी, है फिर भी उर्ध्वगामी अग्नि से भरी हुई है और श्वास-जन्य वायु उसमें भरकर अग्नि को प्रज्वलित रखे हुए है।

२—नाड़ी का आकार बढ़ गया है और वह छोटी अंगुली जितनी बड़ी होगई है।

३—वह बढ़ती जाती है और हाथ-जितनी हो गई है।

४—नाड़ी सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होगई है अथवा शरीर स्वयं 'त्सा' हो गया है—एक ट्यूब-जैसा जो प्रज्वलित अग्नि एवं वायु से पूर्ण है।

५—अब शरीर की आकृति भी लुप्त हो जाती है। सीमाहीन होकर नाड़ी समस्त संसार को आत्मसात् कर लेती है और 'नाल-

जोरपा' वा साधक अपने को अग्नि के महासागर की उमड़ती हुई लहरों के बीच उठते तूफ़ानी झकोरों से झलमलाती ज्वाला के रूप में अनुभव करता है।

इन पाँच अवस्थाओं की साधना में एक घण्टा से कम नहीं लगता; जिनको ध्यान में अधिक डूब जाने का अभ्यास होता है उनको कहीं ज्यादा समय लगता है।

अब उपर्युक्त बातें उल्टे क्रम से घटित होती हैं।

६—तूफ़ानी झोंके शान्त होजाते हैं; अग्नि की उमड़ती लहरें स्थिर होजाती हैं। प्रज्वलित समुद्र छोटा होते-होते शरीर में मिल जाता है (देखिए—अवस्था ४)

७—नाड़ी फिर हाथ-जितनी बड़ी रह जाती है और इसके अन्दर अग्नि प्रवाहित दिखाई पड़ती है। (देखिए अवस्था ३)

८—नाड़ी और छोटी होकर छोटी अंगुली के बराबर रह जाती है। (देखिए अवस्था २)

९—वह बाल के समान सूक्ष्म हो जाती है। (देखिए अवस्था १)

१०—वह बिल्कुल लुप्त हो जाती है। अग्नि दिखाई नहीं देती; सब रूप एवं आकृतियाँ लुप्त हो जाती हैं। इसी प्रकार अन्य पदार्थों की सम्पूर्ण धारणाओं का लोप हो जाता है। मन अनन्त शून्य में निमग्न हो जाता है। जहाँ ज्ञाता वा दर्शक और ज्ञेय वा दृश्य के बीच किसी प्रकार की द्वैत भावना नहीं रह जाती।

दशवीं अवस्था एक प्रकार की समाधि है जिसका समय साधक की उन्नति के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है।

कहते हैं कि मीलारेस्पा जब 'लाची कांग' की गुफ़ा में (जो एवरेस्ट अथवा गौरीशङ्कर शृङ्ग के निकट थी) बर्फ़ से घिर गया था और मार्ग न होने के कारण अगले बसन्त तक उसको वहाँ रुकना पड़ा तो उसने यही साधना की थी। उसने इसका वर्णन अपनी एक कविता में भी किया है।

नरोता या नरोपा* ने इस साधना के लिए जिस विधि का वर्णन किया है उसमें इससे कुछ अन्तर है। उसमें पहले आसन मारकर बैठते हैं। हाथों को जंघों के नीचे से लेजाकर हथेलियों को एक-दूसरे से जकड़ लेते हैं। (१) अब साधक पेट को तीन बार दाहिनी तरफ़ से बाईं तरफ़ और तीन बार बाईं तरफ़ से दाहिनी तरफ़ घुमाता है। (२) इसके बाद जितनी तेज़ी से संभव हो पेट को मथता है (३) इतना हो चुकने पर 'अड़ियल घोड़े' की तरह ज़ोर से सारे शरीर को हिलाता है और उसी आसन से बैठे हुए ऊपर उछलता है। ये तीनों बातें कम-से-कम तीन बार करनी पड़ती हैं और प्रत्येक के अन्त में अधिक-से-अधिक ऊपर उछलना पड़ता है। इन क्रियाओं को करते समय श्वास को अन्दर रखना पड़ता है—यहाँ तक कि 'पेट हाँडी-सा हो जाता है।'

इसके पश्चात् पूर्व-लिखित साधना की तरह दोरजी नलजोरमा का अनुभव करना पड़ता है। इतना कर चुकने पर प्रत्येक हथेली,

*कश्मीर का रहनेवाला एक ब्राह्मण, जो दसवीं शताब्दी में हुआ था। यह दर्शन का श्रेष्ठ पण्डित एवं जादू इत्यादि का भी अच्छा जानकार था। इसकी विद्या का तिब्बत में प्रचार हुआ।

प्रत्येक (पाँव के) तलुए और नाभि के नीचे एक-एक सूर्य की कल्पना की जाती है।

हथेलियों और तलुओं में स्थित सूर्यों को रगड़ने से आग ऊपर उठती है और सारे शरीर में फैल जाती है।

प्रत्येक बार जब श्वास बाहर निकलता है तब कल्पना की जाती है कि उसके साथ निकल-निकल कर अग्नि संसार में फैल रही है—भर रही है। साधना के अन्त में साधक को २१ बार ऊँचा उछलना पड़ता है।

जो लोग 'तूमो' के अच्छे जानकार हैं उनको प्राणायाम में कुछ चेष्टा नहीं करनी पड़ती। उनकी श्वास-क्रिया अभ्यास से स्वयं नियन्त्रित हो जाती है। उनको अग्नि इत्यादि की कल्पना भी नहीं करनी पड़ती। साधना के क्रम से सब कुछ जैसे निश्चेष्ट ही होता जाता है। ध्यान में मंत्र-पाठ करने की आवश्यकता भी उनके लिए नहीं रहती।

कभी-कभी 'तूमो' के विद्यार्थियों की परीक्षा भी ली जाती है।

जो लोग परीक्षा देने को तैयार होते हैं उनको जाड़े की कड़कड़ाती रात में, जब पाला पड़ रहा होता है, किसी नदी या झील के किनारे ले जाते हैं। परीक्षा के लिए प्रायः चाँदनी रात, जब तेज़ हवा चल रही हो, चुनी जाती है। मतलब यह है कि अधिक-से-अधिक ठंडी रात में परीक्षा ली जाती है। यदि उस क्षेत्र के सब चश्मे, नदियाँ या झीलें ठंड से जम गई होती हैं तो हिम में कील

ठोंक-ठोंक कर एक गहरा छेद किया जाता है जो बर्फ के नीचे बहते ठंडे पानी तक पहुँचता है।

अब परीक्षार्थियों को आसन मारकर ज़मीन पर बैठा दिया जाता है। इसके पूर्व उनको नंगा कर दिया जाता है। कपड़े बर्फ़ीले पानी में भिगोये जाते हैं और प्रत्येक के शरीर में इस प्रकार का गीला कपड़ा लपेट दिया जाता है। यह गीला कपड़ा शरीर की गरमी—'तूमो'—द्वारा सूखना चाहिए। सूखते ही इसे फिर पानी में डुबाकर गीला किया जाता और परीक्षार्थी के शरीर पर रखा जाता है। यह क्रिया प्रातःकाल तक चलती है। इस अवधि में जो सबसे ज्यादा कपड़े सुखाता है, वह प्रतियोगिता में विजयी समझा जाता है। जानकारों का कहना है कि कोई-कोई ४० कपड़े तक रात-भर में सुखा लेते हैं। संभव है, इसमें कुछ अतिशयोक्ति हो पर श्रीमती नील ने लिखा है कि "मैंने कुछ 'रेस्पाओं' को शाल-जैसे लम्बे कई कपड़े सुखाते देखा है।"

परीक्षा में सफल होने के लिए कम-से-कम तीन कपड़े सुखाना चाहिए। पर इस नियम में भी कभी-कभी शिथिलता देखी जाती है। परीक्षार्थी तब 'रेस्पा' बन जाता है। 'रेस्पा' उन साधकों को कहते हैं, जो प्रत्येक ऋतु और प्रत्येक स्थान (चाहे वह कितना ही ऊँचा हो) पर एक सूती वस्त्र पहनते हैं। जैसा कि सर्वत्र होता है, नक़ली और ढोंगी 'रेस्पा' भी हैं जो इस नियम का पालन नहीं करते पर ऐसे भी हैं जो इसके भी आगे जाते हैं और वस्त्र का सर्वथा त्याग करते हैं। वे दीर्घ काल तक, और कभी-कभी

जीवन - भर, ऊँचे पर्वतों पर रहकर साधना करते हैं।

गीले कपड़े सुखाने की इस विधि के अतिरिक्त अन्य उपायों से भी 'तूमो' के अभ्यासियों की परीक्षा ली जाती है। एक विधि यह है कि छात्र को पहाड़ों पर बर्फ़ के बीच बैठा दिया जाता है। उसकी गर्मी से जितनी बर्फ़ गलती है और उसके चारों ओर जितनी दूर तक की बर्फ़ गलती है इससे उसकी सफलता का अनुमान लगाया जाता है।

वायु-द्वारा संदेश प्रक्षेपण

तिब्बती योगी भारतीय योगियों की भांति ही, जन-सम्पर्क से बहुत बचते हैं। वे बहुत कम बोलते हैं। अपने शिष्यों को भी गोपनीय विद्याएँ सिखाते समय वाणी का वे बहुत कम उपयोग करते हैं। ध्यानी योगियों के शिष्य अपने गुरु से बहुत कम मिलते हैं और विशेष पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता पड़ने पर ही गुरु के एकान्त-वास में बाधा डालते हैं। कभी-कभी एक भेंट से दूसरी भेंट के बीच वर्षों का समय बीत जाता है किन्तु दूर-दूर रहते हुए भी आवश्यकता और इच्छा होने पर, गुरु और शिष्य के बीच अदृश्य रूप से वार्तालाप और संदेश-प्रक्षेपण का कार्य होता रहता है।

'बेतार के तार का आज पश्चिम में जो स्थान है वही इस प्रकार की 'टेलीपैथी' (विचार-संक्रमण, इन्द्रियों की सहायता के बिना व्यक्तियों के बीच विचारों के आदान-प्रदान) का इस बर्फ़ीले प्रदेश में है।

आधुनिक विश्व के लिए 'टेलीपैथी' सर्वथा अज्ञात वस्तु नहीं है। पश्चिम में 'टेलीपैथी' की घटनाएँ कई बार घटित हो चुकी हैं पर वे आकस्मिक ही रही हैं और उनमें ग्रहणकर्त्ता की अपनी इच्छा का कोई भाग नहीं रहा है; इच्छाकृत संदेशों को 'टेलीपैथी' से भेजने के प्रयत्न में बहुत कम सफलता मिली है क्योंकि इस प्रकार के संदेश दोहराने और उत्तर-प्रत्युत्तर का सिल-सिला जारी रखने में लोग असफल रहे हैं। मादम ब्लेवेट्स्की, कर्नल अल्काट और श्रीमती एनीबेसेण्ट इत्यादि थियोसफ़ी के प्रधान संस्थापकों और नेताओं ने भी इस दिशा में कुछ प्रयोग किये थे और इनको एक सीमा तक सफलता भी प्राप्त हुई थी। अमेरिका और युरोप में आज भी इस क्षेत्र में प्रयोग हो रहा है। फिर भी वहाँ इस विद्या का अभी कोई निश्चित आधार बन नहीं पाया है, न उसने अभी विज्ञान का रूप ही ग्रहण किया है।

तिब्बती साधकों और भारतीय योगियों ने इस दिशा में बहुत अधिक सफलता प्राप्त की है। उनमें 'टेलीपैथी' अपनी चरम सीमा को पहुँच गई है। तिब्बती योगियों का कहना है कि 'टेलीपैथी' एक परिपूर्ण विज्ञान है और उसकी शिक्षा भी अन्य विज्ञानों की भांति प्राप्त की जा सकती है। हाँ, अन्य सब विज्ञानों की भांति इसकी शिक्षा के लिए भी अधिकारी व्यक्ति की आवश्यकता पड़ती है।

इसके लिए कई विधियों का जिक्र किया जाता है पर इस बात पर सब सम्मत हैं कि विचार एवं मन की आत्यन्तिक एकाग्रता इसकी सफलता की कुञ्जी है। आचार्यों का कहना है कि इस विद्या

में सफलता प्राप्त करने के लिए मन पर साधक का पूर्ण नियंत्रण होना चाहिए जिससे अवसर उपस्थित होते ही अथवा इच्छा होते ही विचारों को केन्द्रित किया जा सके।

इस विज्ञान में विचार भेजने वाले की साधना जितनी कठिन है, उतनी ही विचार ग्रहण करने वाले की भी है। उसको भी विचार-तरंगों के स्पर्श से ध्वनित हो उठने के लिए तैयार होना चाहिए। और जिससे उसे विशेष रूप से संदेश पाने की अपेक्षा हो उससे बिल्कुल एक लय अथवा समचित्तता होनी चाहिए।

साधक को स्वेच्छा से किसी एक व्यक्ति या पदार्थ में अपने मन को पूर्णतः केन्द्रित करना चाहिए, यहाँ तक कि चेतना से विश्व की अन्य सब वस्तुओं का लोप हो जाय। यह इस प्रकार के अदृश्य विचार-प्रक्षेपण का मूलाधार है। परन्तु इसके साथ ही एक और शिक्षा परमावश्यक है। प्रत्येक मनुष्य से विचार एवं शक्ति की तरंगें निकलकर विविध दिशाओं में दौड़ती हैं। साधक में जबतक इन विविध अदृश्य विचार एवं शक्ति-तरंगों को पहचानने की योग्यता न हो वह एक विशेष शक्ति-तरंग को ग्रहण करने में सफल नहीं हो सकता। ये विचार और शक्ति-तरङ्गें शून्य में चतुर्दिक दौड़ रही हैं। वे प्रत्येक मनुष्य के पास से गुज़रती हैं, उसे स्पर्श करती हुई आगे निकल जाती हैं। विचार एवं शक्ति-तरंगों के इस सागर के बीच बैठा मनुष्य, आवश्यक दृष्टि और इनको पहचानने और ग्रहण करने की योग्यता होने पर इन में से किसी को इच्छानुसार ग्रहण कर सकता है।

श्रीमती नील ने लिखा है कि मैंने स्वयं साधना करते हुए लामा गुरुओं से इस प्रकार के संदेश प्राप्त किये थे। इन आध्यात्मिक संदेशों के अलावा दो अन्य घटनाओं का भी उन्होंने ज़िक्र किया है जिनमें दूरसे 'सजेशन' अथवा मन के केंद्रीकरण द्वारा आज्ञा दी गई थी।

इनमें एक घटना तो उस समय घटित हुई थी जब श्रीमती नील छद्मवेश में लाशा को जारही थीं और इसीलिए बहुत साधारण वेश में थीं। देनशीन नदी की घाटी की बात है और जिस लामा ने अदृश्य विचार-प्रेक्षण का यह कार्य किया वह चोश्दजोंग मठ का रहनेवाला था।

श्रीमती नील स्वयं लिखती हैं:—"मैंने और योंगदेनने एक खाँई में खुले आकाश के नीचे सोकर रात बिताई थी। यह खाईं वर्षाऋतु के पानी के आघात से अनेक वर्षों में बनी होगी पर इस समय सर्दी और तुषारपात के कारण बिल्कुल सूखी और कड़ी थी। हमारे पास ईंधन न था इसलिए प्रतिदिन की भाँति आज मक्खन मिली गरमागरम चाय हम लोग न पी सके और बिना चाय पिये ही अपनी दैनिक यात्रा आरम्भ करदी थी। भूख-प्यास से व्याकुल हम लोग क़रीब-क़रीब दोपहर तक चलते रहे। दोपहर को हमने सड़क के पास ही एक लामा को †जीनपोश बिछाये बैठे

†तिब्बती जब घोड़े पर चलते हैं तो जीन पर एक कपड़ा या कालीन भी रखते हैं। जब कहीं रुकना होता है तो उसे ज़मीन पर बिछा देते हैं और उसपर बैठते, खाते, सोते या विश्राम करते हैं।

देखा। वह अपना दोपहर का भोजन कर रहा था। उसके साथ तीन तरुण 'त्रपा' (दीक्षित शिष्य) थे। चार घोड़े पास ही सूखी घास चर रहे थे।

ये यात्री अपने साथ लकड़ी का एक बण्डल लाये थे और उनसे आग जला ली थी। आग पर रखे हुए चायपात्र से उस समय भी भाफ़ निकल रही थी।

हम लोगों ने लामा को आदरपूर्वक प्रणाम किया। भूख-प्यास से विकल हमारे मनमें चायपात्र को देखकर जो इच्छा उत्पन्न हुई कदाचित् वह हमारे चेहरे पर पढ़ी जा सकती थी क्योंकि लामा के मुख से निकला 'नींगजे'। 'नींगजे' एक प्रकार का सहानुभूति एवं करुणा का उद्‌गार है जो हिन्दी के 'बेचारा' या 'कैसे दुःख की बात है' की जगह इस्तेमाल किया जाता है।

इसके बाद लामा ने ज़ोर से हमें बैठ जाने और अपने पात्र लाने को कहा। एक त्रपा ने शेष चाय हम लोगों के पात्र में उँडेल दी और हमें खाने के लिए सत्तू ('त्सम्पा') की एक थैली भी दी और अपने अन्य साथियों के कार्य में सहायता देने के लिए चला गया, जो कूच की तैयारी कर रहे थे। इसी समय एक घोड़ा एका-एक भड़ककर भाग खड़ा हुआ। एक आदमी रस्सी लेकर उसको पकड़ने को गया।

लामा बातूनी न था ; उसने घोड़े की तरफ़ देखा जो एक छोटी बस्ती की तरफ़ दौड़ा जा रहा था पर कुछ बोला नहीं। हम लोग चुपचाप खाते रहे। इसी समय हमारी दृष्टि एक काष्ठ-पात्र की

ओर गई जिसमें दही लगा हुआ था; हमने अनुमान किया कि सामने दिखलाई देती पट्टी से, जो सड़क से थोड़ी दूर थी, लामाने दही मँगवाया होगा।

बिना किसी फल या शाक के 'त्सम्पा' का भोजन पेट के लिए कष्टकर सिद्ध होता था, इसलिए मैं सदा दूध-दही-मक्खन आदि को भोजन में शामिल करने के लिए कोई अवसर जाने न देती थी। मैंने योंगदेन के कान में कहा—"लामा के जाने के पश्चात् तुम पट्टी में जाकर थोड़ा दही माँग लाना।"

यद्यपि मैंने यह बात बहुत धीरे से कही थी और हम लामा के बहुत नज़दीक भी न थे पर जान पड़ा जैसे उसने हमारी बात सुन ली हो। उसने तीक्ष्ण दृष्टि से मेरी ओर देखा और कहा—'नींगजे।'

इसके बाद उसने अपना सिर उस दिशा में घुमाया जिधर वह घोड़ा भागा था। घोड़ा बहुत दूर तो नहीं गया था पर चंचल हो रहा था और आसानी से 'त्रपा' की पकड़ में आने को तैयार न था। पर अब उसने अपने गले में फंदा डलवा लिया और त्रपा का अनुसरण किया।

लामा स्थिर दृष्टि से उस 'त्रपा' की ओर देख रहा था, जो घोड़ा लिये हमारी तरफ़ लौट रहा था। एकाएक वह आदमी खड़ा होगया, चारों ओर देखा और पास की झाड़ी से घोड़े को बाँध दिया। इसके बाद वह दूसरी दिशा में जाने लगा और सड़क छोड़कर पट्टी की तरफ़ गया। कुछ देर के बाद हमने देखा कि वह

पट्टी से कुछ लेकर घोड़े के पास आया। जब वह हम लोगों के निकट आगया तो हमने देखा कि वह दही से भरा हुआ एक काष्ठ पात्र है उसने यह पात्र लामा को नहीं दिया वरन् उसे अपने हाथ में लिये हुए गुरु की ओर देखता रहा, मानो पूछ रहा हो—"क्या यही चीज़ आपने मँगवाई थी ? मैं इसका क्या करूँ ?"

उसके इस निःशब्द प्रश्न का लामा ने सिर हिलाकर उत्तर दिया और त्रपा को दही मुझे दे देने की आज्ञा की।"

यह याद रखना चाहिए कि इस त्रपा तक मनःशक्ति से ही लामा ने दही लेते आने का संदेश भेजा था।

"दूसरी घटना तिब्बत के अन्दर नहीं वरन् उस सीमा प्रांत में घटित हुई जो त्ज़ेत्चुएन और कांसू नामक चीनी प्रांतों में मिला लिया गया है, ...तागन से कुंका दर्रे तक जो घना जंगल फैला हुआ है उसके किनारे ६ यात्री हमारी छोटी-सी पार्टी में शामिल होगये थे। यह हिस्सा तिब्बती दुस्साहसिक डाकुओं से भरा हुआ है, इसलिए जो इस जंगल को पार करना चाहते हैं वे मिलकर बड़ा-से-बड़ा झुण्ड बनाने की चेष्टा करते हैं और इस झुण्ड के अधिकाधिक शस्त्र-सज्जित रखने का प्रबन्ध कर लेते हैं। मेरे नये साथियों में से पाँच चीनी यात्री थे; छठा एक बोनपो[1] 'न्गैग्सपा'[2] था—लम्बा, बड़े बालोंवाला, जिसके बाल बँधकर एक बड़ी पगड़ी बन जाते थे।

१-बोनपो = तिब्बत के मूलनिवासियों के प्राचीन धर्म के अनुयायी। २-न्गैग्सपा = जादूगर वा तांत्रिक जिसका सम्बन्ध सरकारी पुरोहितों से होता है।

चूंकि मैं उस देश के विषय में अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करने को उत्सुक थी, मैंने उस आदमी को यात्रा में अपने साथ खाने को निमंत्रित किया। मेरा मतलब यह था कि यों बातचीत करने का मौक़ा मिलेगा। मुझे मालूम हुआ कि वह अपने गुरु के पास जा रहा है जो 'बोनपो' जादूगर या तांत्रिक है और एक पहाड़ी पर बड़ा भारी 'दबथाब'१ कर रहा है। इस अनुष्ठान का उद्देश्य उस क्षेत्र के वासी एक छोटे फ़िरक़े को सतत हानि पहुँचानेवाले दैत्य या प्रेत को वशीभूत करना था। मामूली बातचीत के बाद मैंने उसके गुरु के दर्शन करने की उत्कण्ठा प्रकट की किन्तु उसने कहा कि 'यह बिल्कुल असंभव है। अनुष्ठान-काल में पूरे चांद्रायण मास-भर हमारे गुरु के कार्य में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़नी चाहिए।'

मैंने समझ लिया कि उससे बहस करना फ़िज़ूल है पर उसके हमसे विदा होने के बाद उसका पीछा करने का मैंने निश्चय कर लिया। मैंने सोचा अकस्मात् तांत्रिक के पास पहुँचने से शायद मुझे उसकी तांत्रिक वेदी की एक झलक मिल जाय। फलतः मैंने अपने सेवकों से 'न्गैरसपा' पर निगाह रखने को कह दिया ताकि वह कहीं चुपचाप न खिसक दे।

संभवतः उन्होंने इस मामले पर परस्पर जोर से बातचीत की होगी। 'न्गैरसपा' को हमारी चालाकी मालूम पड़ गई। उसने मुझसे कहा कि इसकी चेष्टा करना व्यर्थ है।

१-'दबथाब' = विशेष तांत्रिक अनुष्ठान।

मैंने कहा कि तुम्हारे गुरु के विरुद्ध मेरे मनमें कोई बुरी भावना नहीं है और मैं केवल ज्ञान-सम्पादन के अर्थ उनसे बातचीत करना चाहती हूँ। इसके बाद मैंने अपने नौकरों को आदमी पर और ज्यादा निगरानी रखने को कह दिया। 'न्गैग्गपा' ने देखा, वह बंदी जैसा होगया है पर चूंकि वह जानता था कि उसे हम से कोई हानि नहीं पहुँचेगी और उसको अच्छी तरह भोजन मिल रहा है, इसलिए उसने इन प्रयत्नों को विनोद के साथ ग्रहण किया।

उसने मुझ से कहा—"इसका भय मत करो कि मैं भाग जाऊँगा। तुम चाहो तो मुझे रस्सियों से बाँध सकती हो। मुझे आगे जाकर गुरु को तुम्हारे आगमन का समाचार देने की आवश्यकता नहीं है। वह अब-तक इसके विषय में सब कुछ जान चुके हैं। "न्गैस लुंग गी तेंग ला लेन ताँग त्सार" ('मैंने वायु से उनके पास संदेश भेज दिया है।')

चूँकि न्गैग्गपा लोग अपनी असाधारण शक्तियों के विषय में अक्सर झूठी शेख़ियाँ बघारा करते हैं इसलिए मैंने उसकी बातों पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया। पर इस बार मैं ग़लती पर थी।

दर्रा पार करने के पश्चात् हमने गोचर भूमि के लम्बे चौड़े क्षेत्र में प्रवेश किया। इन ऊँचे मैदानों में डाकुओं का इतना डर न था इसलिए जङ्गल में रात-दिन छाया की तरह हमारे साथ रहने वाले चीनी व्यापारी हमारा साथ छोड़कर चले गये। न्गैग्सपा का पीछा करने का मेरा विचार दृढ़ था पर इसी समय दूर से छः अश्वारोहियों का झुण्ड हमारी ओर आता दिखाई पड़ा। वे पूरी

चाल से घोड़ों को दौड़ाते हमारी ओर आ रहे थे। मेरे पास आकर वे घोड़ों से उतर गये, प्रणाम किया, मक्खन इत्यादि का उपहार दिया। ये सब शिष्टाचार हो जाने के बाद उन में से एक ज़्यादा अवस्था के आदमी ने मुझसे कहा कि महान् बोनपो न्गैग्सपा ने हमको भेजा है। उसने मुझसे कहा कि मैं वहाँ जाने का विचार त्याग दूँ क्योंकि जिस जगह आचार्य ने अपनी गुप्त तन्त्रवेदी 'कीलीख़ोर' बनाई है वहाँ केवल दीक्षित शिष्य ही जा सकते हैं।

मुझे अपना विचार छोड़ देना पड़ा। न्गैग्सपा ने सचमुच मनःशक्ति से वायु द्वारा अपने गुरु के पास समाचार भेज दिया था।"

कभी-कभी साधक न केवल विचारों के आदान-प्रदान की साधना करते हैं वरन् इसमें विशेष निपुणता प्राप्त करने के पश्चात् दूरस्थ व्यक्तियों का दर्शन कर सकने में भी सफलता प्राप्त करते हैं।

इनके अतिरिक्त तिब्बत में और भी अनेक प्रकार की असाधारण साधनाएँ और साधक मिलते हैं। वस्तुतः भारतीय हठयोग ने तिब्बती योग विद्या तथा भारतीय तन्त्र ने तिब्बती तन्त्र पर पर्याप्त प्रभाव डाला है।

इस तांत्रिक योग के अतिरिक्त तिब्बत में प्राचीन भारतीय योग की अनेक श्रेष्ठ साधनाएँ और विधियाँ भी, जो भारत से लुप्त हो गई हैं या होती जाती हैं, पाई जाती हैं। तिब्बत की भार-

तीय सीमा पर एवं गौरीशङ्कर श्रृङ्ग और कैलाश तथा मानस-सरोवर के आस-पास अब भी अनेक सिद्ध भारतीय योगी तपस्या एवं समाधि में निरत हैं। इन स्थानों में कई योगाश्रम एवं विद्यालय भी हैं जिनमें रहकर अनेक लुप्त योग-साधनाओं और विज्ञानों का अभ्यास योग के श्रेष्ठ साधक करते रहते हैं। कहा जाता है कि इनमें हज़ार-हज़ार वर्ष की आयु वाले भी कई परमहँस हैं।

: ८ :

परमयोगी विशुद्धानन्द और सूर्य-विज्ञान

काशी के परमयोगी श्री विशुद्धानन्द की संक्षिप्त चर्चा श्री ब्रण्टन ने अपनी पुस्तक में की है। यथास्थान इसका वर्णन भी किया जा चुका है। पर उसमें उनकी सिद्धियों की जो चर्चा की गई है। वह उनकी शक्ति-सरिता में एक विन्दु के समान है। वस्तुतः उनमें विविध विद्याओं, विभूतियों और शक्तियों का एक ऐसा भाण्डार है जिसे देखकर मनुष्य आश्चर्य-विमूढ़ हो जाता है। उनके चमत्कार ऐसे हैं कि आँख से देखने पर भी विश्वास नहीं होता। मनमें यही बात आती है कि हम स्वप्न देख रहे हैं अथवा किसी अद्भुत लोक में पहुँच गये हैं। पर सहस्रों व्यक्तियों ने बारम्बार उनकी शक्तियों एवं विभूतियों को देखा है। वस्तुतः योग-शास्त्र तथा योग-सम्बन्धी अन्य ग्रन्थों में जिन बातों को पढ़कर हम लोग रूपक समझते थे, उनकी सत्य-स्थिति का अनुभव परमहंस श्री विशुद्धानन्द को देखकर ही हुआ है। अनेक सिद्ध योगी भी जिन बातों को असंभव वा कल्पित मानते थे, उनका प्रत्यक्ष दर्शन परमहंस जी के जीवन में कितने ही लोगों ने किया है।

इनकी सद्विभूतियों के विषय में आचार्य श्री गोपीनाथ जी कविराज ने बङ्गला भाषा में एक बड़ा ग्रन्थ ही संपादित कर प्रकाशित किया है। यह ग्रन्थ पाँच भागों में है और इसका नाम 'श्री श्री विशुद्धानन्द प्रसंग' है। कविराज जी ने हिन्दी में भी उनके विषय में एक लेख 'कल्याण' के योगांक में प्रकाशित कराया था। इन रचनाओं को पढ़कर 'अचिन्त्य महिमानः खलु योगिनः' शास्त्र-वाक्य को दोहराने की जगह और क्या उपाय शेष रह जाता है? इन रचनाओं में 'अलिफ़लैला'-जैसी अथवा बचपन में सुनी हुई योगियों के जीवन में घटित होने वाली असाधारण घटनाओं की विचित्रता एवं अद्भुतता वर्तमान है।

यहाँ मैं यह कहदूँ तो पाठक को सुविधा होगी कि श्री गोपीनाथ जी भारत के सर्व-श्रेष्ठ विद्वानों में से एक हैं। वह संस्कृत कालेज काशी के प्रिंसपल हैं। भारतीय आगमों के पण्डित हैं। बौद्ध, जैन शास्त्रों का भी उनको बहुत अच्छा ज्ञान है। उनका ज्ञान एवं उनका अध्ययन समुद्र के समान गंभीर है। अँग्रेज़ी, फ्रेंच, जर्मन इत्यादि अनेक युरोपीय भाषाओं में उनकी अबाध गति है। अपने शोध-कार्य से उन्होंने अनेक लुप्त ग्रन्थों एवं विद्याओं का पुनरुद्धार किया है। बड़े ही गंभीर एवं सात्विक वृत्ति के पुरुष हैं। उन्होंने अधिकांश ऐसी ही बातें लिखी हैं जो उन्होंने स्वयं देखी हैं अथवा उनके अनुभव में आई हैं। इतने पर भी उन्होंने बहुत थोड़ी बातें लिखी हैं; आध्यात्मिक विषयों तथा योग की गोपनीयता के शास्त्रादेश के कारण बहुतेरी असाधारण बातों को

उन्होंने अप्रकाशित ही रखना उचित समझा है जिससे वे अन-
धिकारी लोगों के कुतूहल का विषय बनकर न रह जायँ।

कविराज जी ने भी जब इन महात्मा की असाधारण सिद्धियों की बात सुनी थी तो उनको पूर्ण विश्वास नहीं हुआ था। 'कल्याण' वाले लेख में वह स्वयं लिखते हैं:—

"बहुत दिनों पहले की बात है। जिस दिन महापुरुष परमहंस श्री विशुद्धानन्द जी महाराज का पता लगा था, तब उनके सम्बन्ध में बहुत-सी अलौकिक शक्ति की बातें सुनी थीं। बातें इतनी असाधारण थीं कि उनपर सहसा कोई भी विश्वास नहीं कर सकता। अवश्य ही······देश-विदेश के प्राचीन और नवीन युगों में विभिन्न सम्प्रदायों के जिन विभूतिसम्पन्न योगी और सिद्ध महात्माओं की कथाएँ ग्रन्थों में पढ़ता था, उनके जीवन में संघटित अनेक अलौकिक घटनाओं पर भी मेरा विश्वास था। तथापि, आज भी हम लोगों के बीच ऐसे कोई योगी महात्मा विद्यमान हैं, यह बात प्रत्यक्ष दर्शी के मुख से सुनकर भी ठीक-ठीक हृदयंगम नहीं कर पाता था। इसीलिए एक दिन सन्देह-नाश तथा औत्सुक्य की निवृत्ति के लिए महापुरुष के दर्शनार्थ मैं गया।"

इस प्रथम दर्शन का वर्णन वह यों करते हैं:—

"उस समय सन्ध्या समीपप्राय थी, सूर्यास्त में कुछ ही काल अवशिष्ट था। मैंने जाकर देखा, बहुसंख्यक भक्तों और दर्शकों से घिरे हुए एक पृथक आसन पर एक सौम्य-मूर्ति महापुरुष व्याघ्र-चर्म पर विराजमान हैं। उनके सुन्दर लम्बी दाढ़ी है, चमकते हुए

विशाल नेत्र हैं, पकी हुई उम्र है, गले में सफ़ेद जनेऊ है, शरीर पर काषाय वस्त्र है, और चरणों में भक्तों के चढ़ाये हुए पुष्प और पुष्पमालाओं के ढेर लगे हैं। पास ही एक स्वच्छ काश्मीरोपल से बना हुआ यन्त्र-विशेष पड़ा है। महात्मा उस समय योग विद्या और प्राचीन आर्ष-विज्ञान के गूढ़तम रहस्यों की, उपदेश के बहाने, साधारण रूप में व्याख्या कर रहे थे। कुछ समय तक उनका उपदेश सुनने पर जान पड़ा कि इनमें अनन्य साधारण विशेषता है। क्योंकि उनकी प्रत्येक बात पर इतना जोर था, मानो ये अपनी अनुभवसिद्ध बात कह रहे हैं, केवल शास्त्र-वचनों की आवृत्ति-नहीं है। इतना नहीं,—वे प्रसङ्ग पर ऐसा भी कहते जाते थे कि शास्त्र की सभी बातें सत्य हैं, आवश्यकता पड़ने पर किसी भी समय योग्य अधिकारी को मैं दिखला भी सकता हूँ।

'जात्यन्तर परिणाम' अथवा एक चीज़ को दूसरी कर देना

जब कविराजजी परमहंसजी के यहाँ पहुँचे तो उस समय वह 'जात्यन्तर परिणाम' की व्याख्या कर रहे थे। सिद्ध योगी अपनी इच्छा या संकल्प मात्र से एक वस्तु को दूसरी कर दे सकते हैं। जैसे लोहे को सोना। ऐसी सिद्धियों को देखकर लोग दाँतों तले उँगली दबाते हैं और इसे अप्राकृतिक घटना कहकर आश्चर्य से अभिभूत हो उठते हैं। किन्तु परमहंसजी में विशेषता यह है कि क्रियासिद्धि के साथ वह इन बातों की तह में प्रवेश करते हैं— वह प्रत्येक वस्तु का वैज्ञानिक विवेचन करते हैं और वैज्ञानिक ढङ्ग से शोध करके एवं सीखकर उन्होंने अनेक लुप्त विद्याओं का

आविष्कार किया है। इन्हीं विद्याओं में एक सूर्य-विज्ञान भी है।

परमहंसजी ने सूर्य-विज्ञान की सहायता से सैकड़ों प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त की हैं, जिनको देखकर आश्चर्य होता है और जो साधारण आदमी की समझ में भी नहीं आ सकतीं। पर जब वह इनकी व्याख्या करते हैं तब मालूम होता है कि प्रकृति के मूल रूप एवं नियमों को ठीक तरह से जानने के कारण ये बातें बिल्कुल संभव हैं। उनका कहना है कि सूर्य में अनन्त शक्ति है। जो इस शक्ति के रहस्य और उसका उपयोग करने की विधि को जानता है वह अनेक आश्चर्यजनक बातें कर सकता है। इसके द्वारा गन्ध, रूप, रस सबकी सृष्टि और रूपान्तर संभव है।

मैं कह चुका हूँ कि जब कविराजजी वहाँ पहुँचे तो उस समय 'जात्यन्तर परिणाम' का विषय चल रहा था। वह समझा रहे थे कि एक चीज़ दूसरी चीज़ के रूप में कैसे बदल जाती है। जो कुछ उन्होंने उस समय कहा, उसका थोड़े में तात्पर्य यह था कि दुनिया में सब जगह सत्तामात्र रूप या सूक्ष्म भाव से सभी चीज़ें वर्तमान हैं पर सब व्यक्त नहीं हैं—जिस पदार्थ की मात्रा अधिक विकसित, अधिक प्रस्फुटित रहती है, वही व्यक्त होता है, वही दिखाई पड़ता है। जिस चीज़ को हम किसी नाम-विशेष से पुकारते हैं और एक चीज़ समझते हैं रसायनशास्त्री उसीको अलग-अलग करके बता देता है कि इसमें कौन-कौन सी चीज़ें कितनी हैं। वस्तुतः वह एक ही पदार्थ नहीं होता—वहाँ हैं तो सभी पदार्थ पर एक की अधिकता या एक के विकास के कारण अन्य चीज़ों की सत्ता

एक के नीचे दब गई है। वे अव्यक्त रह गई हैं और एक पदार्थ उन-पर हावी होकर व्यक्त हो गया है—वही दिखाई पड़ रहा है और उसीके नाम से सब पदार्थों से युक्त उस वस्तु को हम पुकारते हैं। जैसे लोहे का एक टुकड़ा है। साधारणतः हम उसे लोहा कहकर पुकारते हैं पर लोहे का टुकड़ा सिर्फ़ लोहा ही नहीं है—वस्तुतः उसमें सब पदार्थ सूक्ष्म एवं अव्यक्त रूप में वर्तमान हैं; सम्पूर्ण पदार्थों की उसमें उपस्थिति है; सम्पूर्ण प्रकृति उसमें अव्यक्त रूप से निहित है। परन्तु लौहभाव अधिक विकसित और प्रस्फुटित होने के कारण अन्य पदार्थ अव्यक्त ही रह गये हैं—वे केवल सत्ता मात्र में, सूक्ष्म भाव में वहाँ वर्तमान हैं, लौहभाव ही व्यक्त हो पाया है। जैसे इस लोहे में स्वर्ण-तत्व भी विद्यमान है। पर वह सूक्ष्म भाव-रूप में है; इसीलिए दिखाई नहीं देता। यदि सोने की मात्रा को विकसित कर दिया जाय—उसके विलीन भाव को प्रबुद्ध कर दिया जाय और इस तरह उसकी मात्रा बढ़ा दी जाय तो पहले का लौह भाव दब जायगा। और सोने का विलीन भाव प्रबुद्ध हो जाने से हमें सोना ही दिखाई देने लगेगा और हम उसे लोहे की जगह सोने के नाम से पुकारने लगेंगे। वस्तुतः इस परि-वर्तन में कोई बात अप्राकृतिक नहीं हुई। प्रकृति के तत्वों के बाहर किसी वस्तु का निर्माण संभव ही नहीं है। वहाँ लोहा भी था, सोना भी था, अन्य पदार्थ भी थे। जिसकी प्रबलता करदी गई वही दिखाई देने लगा। असल में लोहा सोना नहीं हुआ। हुआ इतना ही कि लौह भाव, जो अबतक प्रधान था किसी क्रिया-विशेष

से दबा दिया गया, या स्वर्ण भाव जो अबतक सूक्ष्म था किसी क्रिया से बढ़ाकर, प्रबुद्ध करके व्यक्त कर दिया गया। जो सोना था वही प्रस्फुटित होकर ऊपर आ गया; अपनी अव्यक्तता हटाकर प्रकाशित हो गया। व्यवहार-दृष्टि से लोग यही कहेंगे कि लोहा सोना हो गया है और इसीलिए इसे अप्राकृतिक घटना मानकर आश्चर्य करेंगे पर असल में न लोहा नष्ट हुआ, न सोने की नवीन सृष्टि हुई। दोनों पहले भी थे और अब भी हैं, केवल उनका अनुपात एवं घनत्व बदल दिये जाने से दबा हुआ और अव्यक्त रूप व्यक्त हो गया है और पहले का व्यक्त रूप अव्यक्त हो गया है। इसलिए इनका ठीक-ठीक रहस्य और क्रिया-कौशल जान लेने पर किसी भी स्थान पर किसी भी वस्तु का आविर्भाव किया जा सकता है। योग का यही रहस्य है। यही कार्य सूर्य-विज्ञान की सहायता से भी किया जा सकता है। इस प्रकार के आमूल परिवर्तन को ही योगसूत्र में महर्षि पतंजलि ने 'जात्यन्तर परिणाम' कहा है। महर्षि भी इसके कारणों को बताते हुए वही बात किंचित् भिन्न प्रकार से कहते हैं। उनका कहना है कि प्रकृति के आपूरण से यह 'जात्यन्तर परिणाम' होता है और एक जातीय वस्तु अन्य जातीय वस्तु में परिणत होती है। निमित्तकारण प्रकृतिनिष्ठ आवरण को दूर करता है। आवरण या ऊपर का परदा दूर होने पर आच्छन्न प्रकृति उन्मुक्त होकर अपने आप अपने विकारों के रूप में परिणत होने लगती है। लोहे से सोने में बदलने वाले उदाहरण को लीजिए तो महर्षि पतंजलि के मत से लोहे के भीतर की

सूक्ष्म-प्रकृति आच्छन्न है—आवरण से रुकी है इसलिए व्यक्त नहीं है। लौह-प्रकृति अनावृत या आवरण से मुक्त है। इसीसे वह पदार्थ लोहे के रूप में दिखाई दे रहा है और जबतक अन्य पदार्थों की प्रकृति आच्छन्न तथा लोहे की प्रकृति निरावरण है तबतक लौह परिणाम चलता रहेगा। यदि सुवर्ण-प्रकृति का आवरण किसी विद्या या योग के बल से हटा दिया जाय तो लौह-प्रकृति ढक जायगी और उन्मुक्त सुवर्ण-प्रकृति परिणाम-धारा में विक्षोभ या विकार उत्पन्न करेगी। भूतत्त्वविद्, धातुतत्त्वविद् और पदार्थ-वैज्ञानिक जानते हैं कि प्रकृति की गोद में वस्तुओं का रूप सदा बदलता रहता है। भूगर्भ में, प्रकृति के इसी आलोड़न-विलोड़न से कोयला हीरा हो जाता है—एक धातु दूसरी धातु के रूप में बदल जाती है। वस्तुतः कोई नई सृष्टि नहीं होती। जो कभी नहीं था वह कभी होता भी नहीं; असत् से सत् नहीं हो सकता—न अभाव से भाव की उत्पत्ति ही संभव है। हाँ, अव्यक्त नैमित्तिक कारणों से व्यक्त हो जाता है। चूँकि साधारण मनुष्य का संसार केवल अत्यन्त स्थूल एवं व्यक्त को लेकर ही है इसलिए अव्यक्त के व्यक्त होने पर लोग आश्चर्य-विमूढ़ हो जाते हैं।

परमहंसजी जब अपने विषय का प्रतिपादन कर चुके तब कविराज गोपीनाथजी ने उनसे कई प्रश्न किये। प्रश्नों का यथोचित् उत्तर देने के बाद परमहंस जी ने उनसे कहा—'अब तुम्हें यह करके दिखाता हूँ।' कविराज जी लिखते हैं:—"इतना कहकर उन्होंने आसन पर से एक गुलाब का फूल हाथ में लेकर मुझसे

पूछा—'बोलो, इसको किस रूप में बदल दिया जाय?' वहाँ जवा-फूल नहीं था, इसी से मैंने उसको जवाफूल बना देने के लिए उनसे कहा। उन्होंने मेरी बात स्वीकार करली और बायें हाथ में गुलाब का फूल लेकर दाहिने हाथ से उस स्फटिक यन्त्र के द्वारा उसपर विकीर्ण सूर्य-रश्मि को संहत करने लगे। क्रमशः मैंने देखा, उसमें एक स्थूल परिवर्तन हो रहा है। पहले एक लाल आभा प्रस्फुटित हुई—धीरे-धीरे तमाम गुलाब का फूल विलीन होकर अव्यक्त हो गया और उसकी जगह एक ताजा हाल का खिला हुआ झूमका जवा प्रकट हो गया। कौतूहलवश इस जवापुष्प को मैं अपने घर ले आया था।······घर लाने का कारण यह था कि आँखों द्वारा देखने पर भी उस समय मैं यह धारणा नहीं कर पाता था कि ऐसा क्योंकर हो सकता है। मुझे अस्पष्ट रूप से ऐसा भान होता था कि इसमें कहीं मेरा दृष्टि-भ्रम तो नहीं है, मैं कहीं सम्मोहनी विद्या (मेस्मेरिज्म) के वशीभूत होकर ही जवाफूल की कोई सत्ता न होने पर भी जवाफूल तो नहीं देख रहा हूँ। लोग (optical illusion, hallucination, hypnotism) आदि शब्दों के द्वारा इसी प्रकार ऐसी सृष्टि-क्रिया को समझाने की चेष्टा किया करते हैं। ये लोग अज्ञ हैं; क्योंकि सम्मोहन विद्या के प्रभाव से अथवा तज्जातीय अन्य कारणों से जिस सृष्टि का प्रकाश होता है, वह प्रतिभासिक होती है, स्थायी नहीं होती। वह लौकिक व्यवहार में भी नहीं आ सकती। परन्तु व्यावहारिक सृष्टि इससे अलग है। स्वप्न और जाग्रत अवस्था में जैसे भेद है, वैसे ही प्रतिभासिक

और व्यावहारिक सत्तामें भी पृथक्ता है। ...... वस्तुतः मैंने अज्ञान-वश ही सन्देह किया था। वह जवापुष्प जागतिक जवापुष्पों की तरह ही व्यावहारिक सत्तासम्पन्न पदार्थ था, द्रष्टा के दृष्टिभ्रम से उत्पन्न आभासमात्र नहीं था। इस फूल को मैंने बहुत दिनों तक अपने पास पेटी में बड़े जतन से रक्खा और लोगों को दिखाया था। बहुत दिन बीत जाने पर वह सूख गया।"

सूर्यविज्ञान क्या है ?

इस प्रकार गुलाब के फूल को जवापुष्प के रूप में बदल देने के पश्चात् परमहंसजी ने कहा—'इसी प्रकार समस्त जगत् में प्रकृति का खेल हो रहा है। जो इस खेल के तत्त्व को कुछ समझते हैं, वही ज्ञानी हैं। अज्ञानी इस खेल से मोहित होकर आत्म-विस्मृत होजाता है। योग के बिना इस ज्ञान या विज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। इस प्रकार विज्ञान के बिना वास्तविक योग-पद पर आरोहण नहीं किया जा सकता।'

कविराजजी ने पूछा—'तब तो योगी के लिए सभी कुछ संभव है?'

परमहंसजी ने कहा—'निश्चय यही है। जो यथार्थ योगी हैं, उनकी सामर्थ्य की कोई इयत्ता नहीं है; क्या हो सकता है और क्या नहीं, इसकी कोई निर्दिष्ट सीमा-रेखा नहीं है। परमेश्वर ही तो आदर्श योगी हैं; उनके सिवा महाशक्ति का पूरा पता और किसी को प्राप्त नहीं है; न प्राप्त हो ही सकता है। जो निर्मल होकर परमेश्वर की शक्ति के साथ जितना युक्त हो सकते हैं उनमें उतनी

ही ऐसी शक्ति की स्फूर्ति होती है। यह युक्त होना एक दिन में नहीं होता, क्रमशः होता है। इसीलिए शुद्धि के तारतम्य के अनुसार शक्ति का स्फुरण भी न्यूनाधिक होता है। शुद्धि या पवित्रता जब सम्यक् प्रकार से सिद्ध होजाती है तब ईश्वर-सायुज्य की प्राप्ति होती है। तब योगी की शक्ति की कोई सीमा नहीं रहती। उसके लिए असंभव भी संभव हो जाता है।......"

कविराजजी ने पूछा—'इस फूल का परिवर्तन आपने योग-बल से किया या और किसी उपाय से ?'

परमहंसजी बोले—'उपाय मात्र ही तो योग है। दो वस्तुओं को एकत्र करने को ही तो योग कहा जाता है। अवश्य ही यथार्थ योग इससे पृथक् है। अभी मैंने यह पुष्प सूर्य-विज्ञान द्वारा बनाया है। योग-बल या शुद्ध इच्छा-शक्ति से भी सृष्टि आदि सब कार्य हो सकते हैं, परन्तु इच्छा शक्ति का प्रयोग न करके विज्ञान-कौशल से भी सृष्ट्यादि कार्य किये जा सकते हैं।'

कविराज—सूर्य विज्ञान क्या है ?

परमहंस—सूर्य ही जगत् का प्रसविता है। जो पुरुष सूर्य की राशि अथवा वर्णमाला को भलीभाँति पहचान गया है और वर्णों को शोधित करके परस्पर मिश्रित करना सीख गया है, वह सहज ही सभी पदार्थों का संघटन वा विघटन कर सकता है। वह देखता है कि सभी पदार्थों का मूल बीज इस रश्मिमाला के विभिन्न प्रकार के संयोग से ही उत्पन्न होता है। वर्णभेद से, और विभिन्न वर्णों के संयोग-भेद से विभिन्न पद उत्पन्न होते हैं, वैसे ही रश्मिभेद और

विभिन्न रश्मियों के मिश्रण-भेद से जगत् के नाना पदार्थ उत्पन्न होते हैं। अवश्य ही यह स्थूल दृष्टि में बीज सृष्टि का एक रहस्य है। सूक्ष्म दृष्टि में अव्यक्त गर्भ में बीज ही रहता है। बीज न होता तो इस प्रकार संस्थान भेदजनक रश्मि विशेष के संयोग-वियोग विशेष से, और इच्छाशक्ति या सत्य-सङ्कल्प के प्रभाव से भी, सृष्टि होने की संभावना नहीं रहती। इसीलिए योग और विज्ञान के एक होने पर भी, एक प्रकार से दोनों का किञ्चित् पृथक् रूप में व्यवहार होता है। रश्मियों को शुद्ध रूप से पहचानकर उनकी योजना करना ही सूर्य-विज्ञान का प्रतिपाद्य विषय है। जो ऐसा कर सकते हैं, वे सभी स्थूल और सूक्ष्म कार्य करने में समर्थ होते हैं। सुख, दुःख, पाप, पुण्य, काम, क्रोध, लोभ, प्रीति, भक्ति आदि सभी चैतसिक वृत्तियाँ और संस्कार भी रश्मियों के संयोग से ही उत्पन्न होते हैं। स्थूल वस्तु के लिए तो कुछ कहना ही नहीं है। अतएव जो इस योजन और वियोजन की प्रणाली को जानते हैं, वे सभी कुछ कर सकते हैं—निर्माण भी कर सकते हैं और संहार भी; परिवर्तन की तो कोई बात ही नहीं है। यही सूर्य विज्ञान है।

कविराज०—'आपको यह कहाँ से मिला ? मैंने तो कहीं भी इस विज्ञान का नाम नहीं सुना।'

परमहंस—(हँसते हुए) तुम लोग अभी बच्चे हो; तुम लोगों का ज्ञान ही कितना है ? यह विज्ञान भारत की ही वस्तु है—उच्च-कोटि के ऋषिगण इसको जानते थे और उपयुक्त क्षेत्र में इसका

प्रयोग किया करते थे। अब भी इस विज्ञान के पारदर्शी आचार्य अवश्य ही वर्तमान हैं। वे हिमालय और तिब्बत में गुप्तरूप से रहते हैं। मैंने स्वयं तिब्बत के उपान्त भाग में ज्ञानगंज नामक बड़े भारी योगाश्रम में रहकर एक योगी और विज्ञानवित् महा-पुरुष से दीर्घकाल तक कठोर साधना करके इस विद्या को और ऐसी ही और भी अनेक लुप्त विद्याओं को सीखा है। यह अत्यन्त ही जटिल और दुर्गम विषय है—इसका दायित्व भी अत्यन्त अधिक है। इसीलिए आचार्यगण सहसा किसी को यह विषय नहीं सिखाते।

कविराज—क्या इस प्रकार की और भी विद्याएँ हैं?

परमहंस—हैं नहीं तो क्या? चन्द्रविज्ञान, नक्षत्रविज्ञान, वायुविज्ञान, क्षणविज्ञान, शब्दविज्ञान, मनोविज्ञान इत्यादि बहुत विद्याएँ हैं। केवल नाम सुनकर ही तुम क्या समझोगे? तुम लोगों ने शास्त्रों में जिन विद्याओं के नाम मात्र सुने हैं, वे और उनके अतिरिक्त और भी न मालूम कितना क्या है?

सूर्य-विज्ञान के द्वारा सृष्टि, संहार और परिवर्तन का जा दावा कविराजजी से वार्तालाप करते हुए परमहंस स्वामी विशुद्धानन्दजी ने किया था, वह आश्चर्य-जनक होते हुए भी सत्य है। यद्यपि आधुनिक विज्ञान को इस विद्या के मौलिक तत्वों एवं रहस्यों का पता नहीं है पर विज्ञान-वेत्ताओं ने अनुसन्धान-कार्य के सिलसिले में जो कुछ पता लगाया है, उससे यह कल्पना की जा सकती है कि सचमुच इस विद्या पर अधिकार कर लेने के बाद अद्भुत कार्य

किये जा सकते हैं। रश्मियों के सम्बन्ध में आधुनिक विज्ञान ने भी अनेक आश्चर्यजनक सत्यों का पता लगाया है। रश्मियों के संयोग से अनेक आविष्कार किये गये हैं और ऐसी कई रश्मियों की खोज की गई है जिनके द्वारा मनुष्य के अन्दर की जीवनी-शक्ति बढ़ाई या कम की जा सकती है। कीटाणु-नाशक कई रश्मियों का उपयोग तो आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान में किया ही जाता है पर पश्चिम में संहार की जो भयानक तैयारियाँ हो रही हैं उनके सिलसिले में भी कई प्रकार की विनाशक अदृश्य किरणों का आविष्कार हुआ है। एक ऐसी अदृश्य मृत्यु-किरण का आविष्कार किया गया है जिसे किसी व्यक्ति पर संहत करते ही वह बिखरकर शून्य में विलीन हो जायगा; उसका चिन्ह तक शेष न रहेगा।

पर जहाँ अनेक मारक किरणों का अविष्कार हुआ है तहाँ जीवनदायी किरणों की खोज का कार्य भी बन्द नहीं है। इस दिशा में सबसे अधिक उल्लेखनीय शोध केण्ट-निवासी अंग्रेज़ वैज्ञानिक श्री डबल्यू० टी० रसेल ने की है। उन्होंने सूर्य की जीवन-दायी रहस्य-किरणों के शोध में बड़ी सफलता प्राप्त की है।

इस आविष्कार के २६ वर्ष पूर्व की बात है। श्री रसेल क्षय-रोग से पीड़ित थे। अवस्था असाध्य हो गई थी और डाक्टरों ने साफ़-साफ़ कह दिया कि तुम्हारी ज़िन्दगी का अन्त होने में सिर्फ़ ६ महीने की देर है। इस अवधि के पश्चात् तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। पर आज उनकी अवस्था साठ वर्ष से अधिक है। उनके स्वास्थ्य, स्फूर्ति और तेज को देखकर युवकों को ईर्ष्या हो सकती है।

जब डाक्टरों ने उनकी मौत की घोषणा कर दी थी उन्हीं दिनों एक सैनिटोरियम में रहते समय उनके हाथ एक पुस्तक लगी जिसमें बताया गया था कि किस प्रकार सूर्य किरणों से रोगों को दूर करने में सहायता ली जा सकती है। उस समय सूर्य किरण-चिकित्सा बिल्कुल प्रारम्भिक अवस्था में थी। पर इसे पढ़कर श्री रसेल के हृदय में उसके सम्बन्ध में असीम संभावनाओं की कल्पना उत्पन्न हुई। उन्होंने इस विषय में खोज एवं अध्ययन आरम्भ कर दिया। जो कुछ वह पढ़ते थे उनका स्वयं अपने ऊपर प्रयोग करते रहते थे। छः महीने के अन्दर उनका स्वास्थ्य काफ़ी सुधर गया। उस समय अलट्रा-वायलेट किरणों का प्रयोग आरंभ हो गया था और उनसे अनेक रोगियों को लाभ भी हुआ था। इन किरणों से श्री रसेल ने सूर्य-किरणों के रहस्य के विषय में अधिक खोज करने का निश्चय कर लिया। थोड़े ही दिनों की खोज के पश्चात् उनको निश्चय हो गया कि रोगियों को लाभ अल्ट्रा-वायलेट किरणों से नहीं वरन् एक रहस्यमयी सूर्य-किरण के कारण हुआ है। लम्बे शोध के पश्चात् रसेल को रहस्य का पता लग गया। इसके पश्चात् रसेल ने कृत्रिम साधनों द्वारा उस किरण को उत्पन्न करने की कोशिश की जिससे अस्पतालों में, चिकित्सा के लिए, उसका उपयोग हो सके। इस शोध की कहानी रसेल ने स्वयं कही है, जिसे संक्षेप में मैं यहाँ दे रहा हूँ।

"सूर्य का अध्ययन करते हुए मुझे इस रहस्य का पता चला। सूर्य की किरणें ही हमें जीवित रखती हैं। वे मानव-शरीर में

स्पन्दन (Vibrations) उत्पन्न करती हैं। ये स्पन्दन ही हमें शक्ति एवं स्फूर्ति प्रदान करते हैं। यदि ये किरणें हमसे दूर रखी जायँ तो हमारी मृत्यु हो जायगी।

किन्तु सूर्य की किरणें बहुत तरह की होती हैं। कुछ किरणें ऐसी हैं जो गरमी में, जब सूर्य ज़ोर से चमकता रहता है, हमें गरमी की अनुभूति प्रदान करती हैं। किन्तु जिस सूर्य-किरण का मैंने आविष्कार किया है वह हमारे शरीर को आन्तरिक गरमी प्रदान करती है। इसकी गरमी की अनुभूति नहीं होती—यदि आप अपना हाथ इसके सामने रखें तो आपको गरमी की कोई सनसनाहट या अनभूति न होगी किन्तु यदि आप इसके सामने आध घण्टे तक लेटे रहें तो आपको वहाँ से हटना पड़ेगा क्योंकि किरण आपके ख़ून के तापमान को बढ़ा देगी।

जब किसी कारण से यह किरण शरीर के किसी भाग में प्रवेश नहीं करती तो वह हिस्सा ठंडा हो जाता है। ख़ून की गति धीमी पड़ जाती है और शिथिलता एवं निष्क्रियता के कारण वह अपने पीछे नाना प्रकार के विष एवं एसिड छोड़ जाती है। इनसे शरीर के अन्दर ख़राबी और सनसनाहट पैदा हो जाती है। किन्तु ज्यों-ही किरण को शरीर के उस अङ्ग-विशेष पर केन्द्रित किया जाता है ख़ून फिर तेज़ी से चलने लगता है और विष निकल जाता है।......"

इसका यह मतलब नहीं कि पश्चिम का यह विज्ञान और योग-विज्ञान अथवा ऋषि-आविष्कृत सूर्य-विज्ञान एक ही हैं। दोनों

की कोई तुलना नहीं हो सकती क्योंकि अभी पश्चिम का विज्ञान इस विषय में बड़े अन्धकार में है। यहाँ इतनी बातें लिखने का तात्पर्य यही है कि सूर्य की किरणों में असीम शक्तियाँ निहित हैं, इसकी कल्पना अब पश्चिम के वैज्ञानिक भी करने लगे हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

प्राचीन भारतीय ऋषि जब इहलोक या संसार शब्द का प्रयोग करते थे तो उनके संसार की सीमा सूर्यमण्डल तक थी—समस्त सौर जगत् ही उनके लिए संसार था। संसार से मुक्त होने का तात्पर्य सूर्य मण्डल को भेद कर ऊपर जाना था। वेद या शब्द-ब्रह्म की सीमा सूर्यमण्डल तक मानी गई है। उसके बाद सत्य या परब्रह्म है। सूर्य से ही 'सर्व दर्शित्व' संभव है। सूर्य से ही सब भूतों के चैतन्य का उन्मेष और निमेष होता है। अग्नि और सोम सूर्य के ही अङ्ग हैं। प्रणव या ॐकार ही सूर्य हैं। सूर्य साक्षात् नाद-ब्रह्म हैं। निरन्तर रव करने के कारण ही इनकी रवि संज्ञा है। टिमायस के मत से 'अपनी रश्मि से ईश्वर ने जो तेज प्रज्वलित किया है, वही सूर्य है। यह सूर्य-प्रकाश या ताप की प्रभा नहीं, बल्कि 'फोकस' है। यह एक 'लेंस' मात्र है, जिसके प्रभाव से आदिम-ज्योति का रश्मि समूह स्थूल बन जाता है, हमारे सौर जगत् में एकत्र होता है और नाना प्रकार की शक्ति उत्पन्न करता है।'

सूर्य रश्मियों का निरूपण करते हुए कविराज गोपीनाथ जी लिखते हैं:—"सूर्यरश्मियाँ अनन्त हैं। परन्तु मूलप्रभा एक ही है—यह शुक्ल वर्ण है। यही मूल शुक्लवर्ण लाल, नील प्रभृति विभिन्न

वर्णों के रूप में, एवं लाल, नील इत्यादि के परस्पर मिलने के कारण, और भी विभिन्न उपवर्णों के रूप में, प्रकाशित होता है। शुक्ल से सर्वप्रथम लाल, नील, प्रभृति प्रथम स्तर का अविर्भाव होता है। शुक्ल से अतीत जो वर्णातीत तत्त्व है, उसके साथ शुक्ल का संघर्ष होने से इस प्रथम भूमि का विकास होता है। यह अन्तः संघर्ष का फल है। यह वर्णातीत तत्त्व ही चिद्रूपा शक्ति है। इस प्रथम स्तर से परस्पर संयोग या बहिःसंसर्ग होने के कारण द्वितीय स्तर का आविर्भाव होता है। आपेक्षिक दृष्टि से पहली शुद्ध सृष्टि है, और दूसरी मलिन सृष्टि है।·········दूसरे प्रकार से भी यही बात मालूम होती है। ब्रह्म एक और अखण्ड हैं। ये अविभक्त रहते हुए भी पुरुष और प्रकृति रूप में द्विधा विभक्त होते हैं—यही आत्मविभाग (Self-division) या अन्तः-संघर्ष से उत्पन्न स्वाभाविक सृष्टि है। निम्नवर्ती सृष्टि पुरुष और प्रकृति के परस्पर-सम्बन्ध या बहिःसंघर्ष से अविर्भूत हुई है—यही मलिन मैथुनी सृष्टि है। सूर्य विज्ञान का मूल सिद्धान्त समझने के लिए इस अवर्ण, शुक्लवर्ण, मौलिक विचित्र वर्ण और यौगिक विचित्र उपवर्ण—सबको समझना आवश्यक है; विशेषतः अन्त के तीनों को।

ऊपर जो शुक्ल वर्ण की बात कही गई है, यही विशुद्ध सत्त्व है—इस सादे प्रकाश के ऊपर जो अनन्त वैचित्र्यमय रंग का खेल निरन्तर हो रहा है, वही विश्वलीला है, वही संसार है। जैसा बाहर है वैसा ही भीतर भी एक ही व्यापार है। पहले गुरूपदिष्ट

क्रम से इस सादे प्रकाश के स्फुरण को प्राप्त करके, उसके ऊपर यौगिक विचित्र उपवर्ण के विश्लेषण से प्राप्त मौलिक विचित्र वर्णों को एक-एक करके अलग-अलग पहचानना होता है मूलवर्ण को जानने के लिए सादे की सहायता अत्यावश्यक है। क्योंकि जिस प्रकाश में रंग पहचानना है, वह प्रकाश यदि स्वयं रंगीन हो तो उसके द्वारा ठीक-ठीक वर्ण का परिचय पाना सम्भव नहीं। रंगीन चश्मे के द्वारा जो कुछ दिखाई देता है वह दृश्य का रूप नहीं होता, यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं। योगशास्त्र में जिस तरह चित्त-शुद्धि हुए बिना तत्त्वदर्शन नहीं होता, सूर्य-विज्ञान में भी उसी तरह वर्ण-शुद्धि हुए बिना वर्ण-भेद का तत्त्व हृदयङ्गम नहीं हो सकता। हम जगत् में जो कुछ देखते हैं सब मिश्रण है—इसका विश्लेषण करने पर सङ्घटक शुद्ध वर्ण का साक्षात्कार होता है। उन सब वर्णों को अलग-अलग सादे वर्ण के ऊपर डालकर पहचानना होता है। सृष्टि के अन्दर शुक्लवर्ण कहीं भी नहीं है। जो है वह आपेक्षिक है। पहले कौशल से विशुद्ध शुक्ल वर्ण को प्रस्फुटित कर लेना होगा।......पहले ही कहा है कि समस्त जगत् सादे के ऊपर खेल रहा है—इस रंगों के खेल को स्थान विशेष में अवरुद्ध कर देने से ही वहाँ पर तुरन्त शुक्ल तेज का विकास हो जाता है। इस शुक्ल को कुछ काल तक स्तम्भित करके उससे पूर्वोक्त विचित्र वर्णों का स्वरूप पहचान लेना होता है। इस प्रकार वर्ण परिचय हो जाने पर सब वर्णों के संयोजन और वियोजन को अपने अधीन करना होता है। कुछ वर्णों के निर्दिष्ट क्रम से

मिलने पर निर्दिष्ट वस्तु की सृष्टि होती है। क्रम भंग करने से नहीं होती। किस वस्तु में कौन-कौन से वर्ण किस क्रम से रहते हैं, यह सीखना होता है। उन सब वर्णों को ठीक उसी क्रम से सजाने पर ठीक उस वस्तु की उत्पत्ति होगी—अन्यथा नहीं। जगत् के यावत् पदार्थ ही जब मूलतः वर्ण-संघर्ष-जन्य हैं, तब जो पुरुष वर्ण-परिचय तथा वर्ण-संयोजन और वियोजन की प्रणाली जानते हैं उनके लिए उन पदार्थों की सृष्टि और संहार करना संभव न होने का कोई कारण नहीं।

साधारणतः लोग जिसे वर्ण कहते हैं। वह सूर्य विज्ञानविद् की दृष्टि में ठीक वर्ण नहीं—वर्ण की छटा मात्र है। शुद्ध सत्त्व का आश्रय लिये बिना वास्तविक वर्ण का पता पाने का कोई उपाय नहीं।······ऊपर शुक्ल वर्ण या शुद्ध सत्व की जो बात कही गई है। वही आगम-शास्त्र का बिन्दु-तत्व है। यह चन्द्र विन्दु है। यही कुण्डलिनी और चिदाकाश है—यही शब्द मातृका है। इसके विक्षोभ से ही नाद और वर्ण उत्पन्न होते हैं।" इस प्रकार सूर्य-विज्ञान के मत से सृष्टि का आरम्भ किस प्रकार होता है, यह बतलाने के पश्चात् कविराजजी उदाहरण से इसे समझाते हैं। यहाँ यह याद रखना चाहिए कि वैज्ञानिक सृष्टि मूल सृष्टि नहीं है।

"दृष्टान्त रूप से लें कि हमें कर्पूर की सृष्टि करनी है। मान लीजिये कि सौर विद्या के अनुसारा क, म, त, र इन चार रश्मियों का इस प्रकार क्रमबद्ध संयोग होने से कपूर उत्पन्न होता है। अब

उद्बुद्ध श्वेत वर्ण के ऊपर क्रमशः क, म, त और र, इन चार रश्मियों को डालने से कपूर की गन्ध मिलेगी। परन्तु एक ही साथ चारों रश्मियाँ नहीं डाली जा सकतीं—डालने से भी कोई लाभ नहीं। सृष्टि काल में ही सम्पन्न होती है। क्रम काल का धर्म है। सुतरां क्रम-लंघन असंभव है। इसलिए सत्वशोधन करके उसके ऊपर पहले 'क' वर्ण डालने से ही स्वच्छ सत्त्व 'क' के आकार में आकारित और वर्ण में रंजित हो जायगा। शुद्ध सत्त्व ही वास्तविक आकर्षण-शक्ति का मूल है। इसीसे वह 'क' को आकर्षित करके रखता है और स्वयं भी उसी भाव में भावित होजाता है। इसके बाद 'म' डालने पर वह भी उसमें मिलकर उसके अन्तर्गत आजायगा। इसी प्रकार 'त' और 'र' के विषय में भी समझना चाहिए। 'र' अन्तिम वर्ण है—इसी से इसके डालते ही कर्पूर अभिव्यक्त होजाता है। अव्यक्त कर्पूर-सत्ता की अभिव्यक्ति का यही आदि क्षण है। यदि क, म, त और र, इन रश्मियों के उस संघात को अक्षुण्ण रखा जाय तो वह अभिव्यक्ति अक्षुण्ण रहेगी, अव्यक्त अवस्था नहीं आवेगी। परन्तु दीर्घकाल तक उसे रखना कठिन है। इसके लिए विशिष्ट चेष्टा चाहिए क्योंकि जगत् गमनशील है। यहाँ पर एक गम्भीर रहस्यमय बात आती है। अव्यक्त कर्पूर ज्योंही व्यक्त हुआ त्योंही उसको पुष्ट करने के लिए धारण करने के लिए—यन्त्र चाहिए। इसी का दूसरा नाम योनि है। वह व्यक्तसत्ता लिङ्गमात्र है। योनिरूपा शक्ति प्रकृति की अन्तर्निहित लालिमा भी विश्वव्यापी है तथापि इसकी भी अभि-

व्यक्ति है। अन्तिम वर्ण की तरह यह लालिमा भी विश्वव्यापी है तथापि इसकी भी अभिव्यक्ति है। अन्तिम वर्ण के संघर्ष से जिस समय कर्पूर-सत्ता केवल लिङ्ग रूप में अलिङ्ग अव्यक्त सत्ता से आविर्भूत होती है, उस समय यह लालिमा ही अभिव्यक्त होकर उसको धारण करती है। और उसको स्थूल कर्पूररूप में प्रसव करती है। विश्वसृष्टि में, यवनिका की आड़ में, यह गर्भाधान और प्रसव-क्रिया निरन्तर चल रही है। सूर्य-विज्ञान-वेत्ता प्रकृति के इस कार्य को देखकर उस पर अधिकार करने की चेष्टा करता है। संयोग की तीव्रता के अनुसार सृष्टि-विस्तार का तारतम्य होता है। कर्पूर का सत्तारूप से आविर्भाव Qualitative (विलक्षण, अभिनव) सृष्टि है, उसका परिमाण या मात्रा की वृद्धि Quantitative (पूर्व सृष्ट पदार्थ की मात्राविषयक) सृष्टि है। मात्रावृद्धि अपेक्षाकृत सहज कार्य है। जो एक बूँद कर्पूर निर्माण कर सकते हैं, वे सहज ही उसे क्षणभर में लाखमन में परिणत कर सकते हैं। क्योंकि प्रकृति का भाण्डार अनन्त और अपार है उसके साथ संयोजन कर दोहन कर सकने पर चाहे जिस वस्तु को चाहे जिस परिमाण में आकर्षित किया जा सकता है।"

इस प्रकार के अगणित गूढ़ विज्ञान आज भारत से लुप्त होते जा रहे हैं। परमहंस श्री विशुद्धानन्दजी की विशेषता यह है कि उन्होंने वैज्ञानिक ढङ्ग पर सूर्य-विज्ञान इत्यादि के अध्ययन-अन्वेषण का कार्य पहली बार किया है। दुःख है कि ऐसे महत्त्व-पूर्ण वैज्ञानिक अनुसंधान के कार्य की ओर हमारे मनीषियों का ध्यान

नहीं गया। इस विद्या के पुनरुद्धार का क्रम तब तक पूर्ण नहीं कहा जा सकता जबतक सात्विक एवं योग्य अधिकारियों के चुनाव एवं शिक्षा की उचित व्यवस्था नहीं होती। इस विद्या को गोपनीयता के गर्त्त से निकालकर सुदृढ़ वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता है। वस्तुतः परमहंसजी ने इस दिशा में जो सफलता प्राप्त की वह आज भी पाश्चात्य विज्ञान की संकुचितता के प्रति एक 'चैलेंज'—चुनौती—है।*

---

*यह लेख प्रधानतः कविराजजी के लेख का संक्षिप्त रूपान्तर मात्र है। वैज्ञानिक अनुसन्धान की दिशा एवं सत्य की सर्वव्यापकता के निदर्शन के लिए यत्र-तत्र पाश्चात्य गवेषणाओं का हवाला अलग से भी जोड़ा गया है। बहुत जटिल अंशों को छोड़ दिया गया है।

: ६ :

कुछ भारतीय योगी और उनकी चमत्कारपूर्ण विभूतियां

[व्यक्तिगत रूप से अनुभूत घटनाएँ]

१. श्री विशुद्धानन्द जी का जीवन और विभूतियाँ

परमहंस श्री स्वामी विशुद्धानन्दजी का जन्म लगभग ८२ वर्ष पहले पूर्वी बंगाल के बर्दवान ज़िले के बंडूल नामक गाँव में प्रसिद्ध चट्टोपाध्याय वंश में हुआ था। इनके पिता का नाम अखिलचन्द्र चट्टोपाध्याय एवं माता का नाम राजराजेश्वरी देवी था। इनमें बचपन से ही अनेक विशेषताएँ थीं। चरित्रबल और संयम इनमें बहुत था। खेलों में भी यह प्रायः देव-पूजा किया करते थे और समय मिलते ही एकान्त में बैठकर भी भगवान् का ध्यान लगाते थे। कहते हैं कि उस समय, लड़कपन में भी इनके अज्ञान में ही, इनमें वाक्सिद्धि इत्यादि अनेक ऐश्वर्य देखे गये थे। ऐसी कई घटनाएँ प्रसिद्ध हैं। एक बार खेल में यह मिट्टी के शिवजी बनाकर उनकी पूजा कर रहे थे, उसी समय इनके एक साथी ने अशिष्ट आचरण करके पूजा में विघ्न किया, जिससे इनको क्रोध आ गया और उसी क्रोध में इनके मुँह से निकल गया—'शिवजी का अपमान तुमने किया है इसलिए शिवजी का साँप तुम्हें डसेगा।'

वास्तव में यही हुआ; लड़के को साँप ने डस लिया। परन्तु इससे भी आश्चर्य की बात यह है कि उस डसे हुए अङ्ग पर इनके हाथ फेरते-फेरते देह से विष की क्रिया दूर होगई और लड़का जी उठा।

इसी प्रकार एक बार की बात है कि इनकी माँ पर हैज़े का आक्रमण हुआ। चिकित्सकों ने जवाब दे दिया। माँ के प्रति इन की बड़ी ममता और भक्ति थी इसलिए उसकी आसन्न मृत्यु की कल्पना से मर्माहत हो यह गृहदेवता श्री श्यामसुन्दर के सामने माता की जीवन-रक्षा की प्रार्थना करने लगे। पर उसका कोई प्रभाव न दीख पड़ा, अवस्था ख़राब ही होती जा रही थी। तब यह एक लोहे का घन हाथ में लेकर एक तरफ़ बैठ गये और कहा कि माता की मृत्यु हुई तो मूर्ति के टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा। इस मान में भगवान के प्रति अनास्था नहीं वरन अत्यन्त निर्भरता तथा विश्वास था। अन्त में भगवान ने सुनी और इनकी माता बच गईं। इनके विषय में यह भी कहा जाता है कि बचपन में इनको देव-दर्शन भी होता था। और कभी-कभी यह उनसे बात-चीत करते भी देखे जाते थे। जान पड़ता है, यह पूर्वजन्म की तपस्या का फल था।

किशोरावस्था में एक ऐसी घटना घटी जिसने इनके जीवन को एकदम पलट दिया। बात यह थी कि किसी पागल कुत्ते ने इनको काट खाया। इससे इन्हें जलातंक हो गया था। इलाज तो बहुत हुआ पर कुछ लाभ न होता था। इन्हें बड़ा कष्ट था। मर्मान्तक पीड़ा से कराहते हुए यह मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे। इसी समय

श्री श्री निमानन्द परमहंस नामक एक महात्मा उधर आये और उन्होंने अपने योगबल से बहुत थोड़े समय में इन्हें मृत्यु के मुँह से बचा लिया। यह महात्मा एक असाधारण शक्ति-सम्पन्न सिद्ध योगी थे। अधिकांश समय हिमालय के ज्ञानगंज नामक विराट् योगाश्रम में रहते थे। इनकी अवस्था बहुत अधिक थी—इतनी जिस पर साधारणतः लोग विश्वास न करेंगे। विशुद्धानन्द जी के अच्छे होने के कुछ समय बाद यही महात्मा उनको अपने साथ, अपनी शक्ति से, आकाशमार्ग द्वारा हिमालय के उस पार ले गये और मानसरोवर के समीप अपने गुरुदेव के चरणों में उपस्थित कर दिया। मानसरोवर के समीप निवास करनेवाले श्री निमानन्द जी के गुरु हज़ार वर्षों से अधिक उम्र होने पर भी आजतक स्थूल शरीर से विद्यमान हैं। इन्होंने किशोर को यथाविधि शक्तिसंचार-पूर्वक दीक्षा दी और योग-शिक्षण के लिए ज्ञानगंज आश्रम में भेज दिया। इस विराट् आश्रम में योग-शिक्षा के साथ ही अनेक प्रकार की प्राकृतिक विज्ञान-शिक्षा की भी व्यवस्था है। विज्ञान से अभिप्राय उन विज्ञानों तथा विद्याओं से है जो प्राचीन काल के ऋषियों को अवगत थे तथा जिनका अब साधारणतः लोप होता जा रहा है। ज्ञान-गंज आश्रम में श्रीमत् श्यामानन्द परमहंस नामक एक महा-पुरुष इन विज्ञान-विभाग के अधिष्ठाता थे। विशुद्धानन्दजी ने इसी ज्ञानगंज आश्रम में महायोगी श्री भृगुराम परमहंस देव से योग के समस्त अंगों का और विज्ञानविद् श्री श्यामानन्द परमहंस से प्राकृतिक विज्ञान का रहस्य प्राप्त कर यथा समय ब्रह्मचर्य-व्रत का

उद्यापन किया। ब्रह्मचर्य अवस्था के बाद दण्डी और संन्यासी अवस्था में आश्रमानुकूल सब साधनों का अभ्यास करके यह नियम-पूर्वक परीक्षा में उत्तीर्ण हुए और गुरुदेव की आज्ञानुसार पुनः समाज में लौटकर लोक-कल्यण का व्रत लिया। आश्रम से भारत आने पर बहुत समय तक तीर्थों में पर्यटन किया। बाद में बर्दवान् ज़िले के गुष्कारा स्थान में कुछ समय तक रहे। फिर अपने गाँव बण्डूल में एक आश्रम बनवाया और वहाँ गुरुप्रदत्त शिव-लिङ्ग की बण्डूलेश्वर नाम से स्थापना की। अनुभवी लोगों का कहना है कि इस शिवलिङ्ग में अलौकिक शक्ति है। हिमालय के योगी वर्षों तक इसका आश्रय ले योग-क्रिया किया करते थे। विशुद्धानन्द जी पर प्रसन्न होकर इनके गुरुदेव ने इन्हें यह लिङ्ग उपहार स्वरूप प्रदान किया था। यह इसे मस्तक में रखते थे। केवल उपासना के समय मस्तक से मुखादि द्वारों से बाहर निकाल लेते और उपासना के पश्चात् फिर मस्तक में यथा-स्थान धारण कर लेते थे। गुरुदेव की आज्ञानुसार बण्डूल में आश्रम स्थापित होने पर यह शिवलिङ्ग इन्होंने वहीं स्थापित कर दिया और एक दूसरा शक्तिशाली शिवलिङ्ग मस्तक में धारण कर लिया। बण्डूल आश्रम के पश्चात् बर्दवान, काशी, झालदा, पुरी और कलकत्ता आदि में भी आश्रमों की स्थापना की।

'गन्ध बाबा'

यह अशिक्षित और अर्द्ध-शिक्षित समाज में साधारणतः 'गन्ध बाबा' के नाम से मशहूर हैं। इनके शरीर से एक अपूर्व दिव्य-

गन्ध सदा निकलती रहती है। ब्रह्मचर्य के परिणाम स्वरूप देह के पूर्णतः शुद्ध होने पर शरीर से इस प्रकार की दिव्य गन्ध स्वाभाविक ही निकला करती है। यह जहाँ बैठते वहाँ से दूर तक यह दिव्य-गंध छा जाती थी। इनके भक्तों का कहना है कि कई बार इनका चिन्तन करने पर भी यह दिव्य-गंध भक्त के चारों ओर छा जाती है। कविराज गोपीनाथजी ने अपने लेख की एक पादटिप्पणी में यह भी लिखा है कि 'परमहंस देव की स्थूल देह किसी एक निर्दिष्ट स्थान में रहते हुए भी जब कभी वे अलौकिक रूप से दूर देश में भक्तों के सामने उपस्थित होते हैं, तब सबसे पहले उनकी इस सुगन्धि का ही स्पष्ट रूप से भक्तों को अनुभव होता है।'

मस्तक में शालग्राम और शिवलिंग

कविराज जी लिखते हैं:—"इनकी योगशक्ति और विज्ञानशक्ति का वर्णन करना असंभव है। जिनका इनके साथ थोड़ा-बहुत अन्तरंग सम्बन्ध हुआ है, वे हज़ारों प्रकार से इनके अलौकिक ज्ञान, विभूति, करुणा और वात्सल्य गुणों से परिचित हैं। इस निबन्ध के लेखक ने इनसे बहुत दूर रहकर, और इनके निकट बैठकर जिन लोकातीत कार्यों को अपनी आँखों से देखा है, उनको एक-एक करके लिखने से साधारण पाठक उनमें से किसी को भी संभव नहीं मानेंगे और सहसा उनपर विश्वास करने में भी समर्थ नहीं होंगे। ये सारी बातें इतनी अधिक संख्या में और इतने विचित्र ढंग से इनके जीवन में प्रकट हुई हैं कि धीरज के साथ विचार करने पर अत्यन्त कठोर शुष्क नास्तिक-हृदय में भी भग-

वान् की मङ्गलमय विभूति और अहैतुकी अपार करुणा पर विश्वास हुए बिना नहीं रह सकता। परन्तु इन सब व्यक्तिगत बातों को लेकर लोगों के सामने प्रकट होना अशोभन मालूम होता है, इसीलिए विशेष विवरण न देकर थोड़े में कुछ ख़ास-ख़ास बातें लिखी जाती हैं।

परमहंस देव अपने मस्तक के भीतर शालग्राम और शिवलिंग धारण किये रहते हैं। साथ ही वहाँ १०८ स्फटिकमणियों की एक माला भी है।······पूजा आदि के समय उक्त शालग्राम और शिवलिङ्ग को मुख आदि द्वारों से बाहर निकालकर यथा-विधि पूजा कर चुकने पर पुनः यथास्थान उन्हें रख देते हैं। एक बार एक भक्त जमाये हुए पारे से बना हुआ एक शिवलिङ्ग लाये और उसे बाबा को दिखलाया। बाबा ने कहा—'तुम कहो तो मैं इस पारद से बने हुए शिवलिङ्ग को निगल जाऊँ।' शिष्य घबरा उठे। लगभग एक पाव पारा खा लेने पर कहीं ऐसा न हो कि बाबा का शरीर न रहे। उनको यह डर हो गया। इसीलिए वह इधर-उधर ताकने लगे। आख़िर अन्य गुरु-भाइयों के उत्साह दिलाने पर वह राज़ी हो गये। तब परमहंसजी ने सबके सामने उस शिवलिङ्ग को मुख में लेकर मस्तक पर चढ़ा लिया और उसे वहीं स्थापित कर दिया। फिर एक बार उन्होंने इस पारे के शिवलिङ्ग को भी मुख से निकालकर उसकी पूजार्चना करने के बाद पुनः मस्तक में चढ़ा लिया था।

शरीर में विद्युत् का आधिक्य

इनके शरीर में तेज एवं विद्युत् का ऐसा आधिक्य है कि मच्छर मधुमक्खी, हड्डे, भँवरे आदि दंशन करते ही उसी क्षण मरकर राख हो जाते हैं। दंशन न करने पर उनकी कोई हानि नहीं होती। कहते हैं, इनके शरीर को डसने वाले साँप तक मर जाते हैं। यह जब किसी बाघ सिंह इत्यादि की ओर तीक्ष्ण नेत्रों से देखते हैं तो इस विद्युत्प्रवाह के कारण वे तुरन्त सिर झुकाकर वश्यता स्वीकार कर लेते हैं। जब यह गुफा में रहते थे तो कई विषधर सर्पों को साथ रखते थे और योग-क्रिया के समय उनको शरीर से लपेटे रहते थे जिससे शरीर शीतल रहता था। झालदा-प्रवास में बाघ इत्यादि भी पास रहते थे। जाड़े के दिनों में रात को यह बाघ से लिपटकर सो जाते थे जिससे शरीर खूब गरम रहता था।

शरीर के अन्दर मणि एवं स्फटिक

कविराजजी के शब्दों में "परमहंस देव के शरीर में बहुत से स्फटिक-गोलक (Crystal-balls) हैं। तीव्र योगक्रिया के प्रभाव से जब शरीर में बहुत अधिक गरमी बढ़ती है। तब इन स्निग्ध वस्तुओं के संसर्ग से वह बहुत-कुछ शान्त हो जाती है। इन स्फटिकों के अतिरिक्त मोती, हीरा आदि वस्तुएँ भी इनके देह के अन्दर स्थान-विशेष में रक्षित हैं। शीत के समय शरीर के संकोच होने के कारण कभी-कभी दो-एक स्फटिक अपने-आप ही लोमकूप के द्वारा शरीर से बाहर निकल पड़ते हैं। कई बार प्रसंग-वश वे स्वयं ही किसी तत्त्व की व्याख्या करते समय देह से स्फटिक

निकालकर दिखाया करते हैं। रोम-छिद्रों से स्फटिकों के बाहर निकलते समय न तो किसी प्रकार का कष्ट होता है और न खून ही निकलता है। शरीर से निकलते ही स्फटिकों में से अति पवित्र दिव्य गन्ध आती है। आप शरीर के अन्दर भी एक जगह से दूसरी जगह स्फटिकादि को ले जाते हैं। साधारण लोगों की तो बात ही क्या है, देहतत्त्व के पण्डित भी अपने अपूर्व ज्ञान से इस बात को नहीं समझ सकते कि यह सब कैसे होता है। योगी की देह बाह्य दृष्टि से साधारण देह की तरह प्रतीत होने पर भी उसमें निश्चय ही एक अचिन्त्य वैशिष्ट्य रहता है।

अनेक अलौकिक चमत्कार

एक बार परमहंसदेव ने अपने विभिन्न अङ्ग-प्रत्यङ्गों को एक-दूसरे से अलग करके दिखलाया था। और आश्चर्य यह कि उसी समय वे अदृश्य रूप से शून्य में बोलते हुए शिष्य को समझा भी रहे थे। फिर किसी अपूर्व शक्ति के प्रभाव से वे सब अलग-अलग हुए अङ्ग-प्रत्यङ्ग पुनः अपने आप ही परस्पर जुड़ गये और शरीर पूर्व-परिचित आकार में प्रकट हो गया।

एक दिन कुछ जिज्ञासु भक्तों को आपने अपने हाथ का एक परत चमड़ा अलग करके फिर उसे हाथ से ज्यों का त्यों लगाकर समझाया था कि पाश्चात्य शरीर-विज्ञानियों की लौकिक विद्या के द्वारा योगियों के स्वरूप का निरूपण संभव नहीं है। एक बार आपका शरीर नवजात शिशु के आकार में बदल गया था। इस लेखक को एक दिन आप पुराण-वर्णित श्री विष्णु भगवान के

नाभिकमल से ब्रह्माजी के उत्पन्न होने की बात समझाते हुए कहने लगे कि 'पुराणों का यह वर्णन 'रूपक' नहीं है, किन्तु अक्षर-अक्षर सत्य है। कुण्डलिनी-शक्ति का विकास होने पर जब योग के अन्तराकाश में परमादित्य-स्वरूप ज्योतिर्मय तेजपुञ्ज का उदय होता है, तब सूर्योदय के समय कमल की भांति उसका नाभिकमल अपने आप ही प्रस्फुटित हो जाता है। जो वास्तव योगी है, उसको ऐसा अवश्य होता है। हाँ, परन्तु जो नाभिधौति आदि दुरूह क्रियाओं में पूर्णरूप से निष्णात नहीं हैं, उनके कमल का विकास नहीं हो सकता।' इतना कहकर वे फिर बोले—'साधारण बद्ध-जीवों की नाभि में ग्रन्थि लगी है, इस ग्रन्थि का मोचन न होने तक ऊर्ध्व रति असंभव है।' इसके बाद दोनों हाथों से नाभिप्रदेश के दो-चार बार सञ्चालन करते ही नाभिप्रदेश एक गड़हे के रूप में परिणत हो गया। उपस्थित भक्तगण यह देखकर चकित हो गये। क्रमशः उस गड़हे में से एक अति सुन्दर नाल का आविर्भाव हुआ और उसके ऊपर अत्यन्त लावण्ययुक्त दिव्य कमल दिखलाई पड़ा। हाल के खिले हुए कमल की पवित्र गंध से सारा घर और आँगन सुगन्धित हो उठा। यहाँ तक कि उस समय जो लोग दर्शन के लिए बाहर से आ रहे थे, उनको भी घर में प्रवेश करने के पूर्व से ही सुगन्धि आने लगी। कुछ क्षणों के बाद नाभि को हिलाते ही कमल नाल-सहित संकुचित होकर भीतर प्रवेश करके अदृश्य हो गया।

एक बार मेरी जप की माला टूट गई। मैं उसको ठीक शास्त्रीय

ढङ्ग से गूँथ देने के लिए बिखरे हुए रुद्राक्ष के दाने और थोड़े-से रेशम को लेकर बाबा के पास पहुँचा और उनसे मैंने प्रार्थना की। उन्होंने रुद्राक्ष के दानों को और रेशम को गोमुखी में रखकर उसे अपनी मुट्ठी में मींच लिया। फिर दो-तीन बार उस पर हाथ फिराकर गोमुखी मुझे दे दी। ऐसा करने में तीन-चार सेकेण्ड से अधिक नहीं लगा था। मैं गोमुखी से निकालकर देखता हूँ तो माला बड़ी सुन्दरता से गुँथी हुई है। यहाँ तक कि सुमेरु तक विधिपूर्वक लगा है। गाँठें भी शास्त्रीय प्रक्रिया के अनुसार ही लगी हैं। पूछने पर उन्होंने कहा कि 'यह वायुविज्ञान का कार्य है। जिसको तुम लोग अल्प समय कहते हो वह वास्तव में अल्प नहीं है। सूक्ष्म स्तर से चले जाने पर उसीमें दीर्घकाल का भी कार्य हो सकता है।

परमहंसदेव की शक्ति की तुलना नहीं है।······मनुष्य की शक्ति कहाँ तक विकसित हो सकती है, इस बात को परमहंसजी के साथ अन्तरङ्ग भाव से परिचित होने पर ही जाना जा सकता है। उनके वस्तुनिर्माण की बात कहने की तो विशेष आवश्यकता ही नहीं है। कारण, इस बात को तो बहुत लोग जानते हैं। हमारे अपने घर में अत्यन्त कठिन रोग के समय, उनको किसी तरह की ख़बर न देने पर भी, बहुत बार उन्होंने स्थूल या सूक्ष्म शरीर से आविर्भूत होकर रोगी को उपदेश दिया है और औषध देकर भी तत्काल ही उसे रोगमुक्त कर दिया है। पाँच-सात मील दूर से क्षण-भर में आविर्भूत होकर स्थूल और पञ्चभूतात्मक औषध प्रदान

करना आदि कार्य साधारण बुद्धि के अगोचर हैं। कभी-कभी तो ऐसी घटना हुई है कि एक सेकण्ड असावधानी की जाती तो भयङ्कर परिणाम हो जाता, परन्तु उस एक सेकण्ड के बीतते-बीतते ही उन्होंने आविर्भूत होकर अपनी मङ्गलमयी रक्षा-शक्ति का प्रयोग किया। ऐसी घटनाओं का विस्तृत वर्णन मेरे पास है, परन्तु यहाँ उसके प्रकट करने की आवश्यकता नहीं है।"

योग तथा विज्ञान किसी भी क्षेत्र में उनकी गति अबाध है। उनकी शक्ति की सीमा नहीं है। सूर्य-विज्ञान, वायु-विज्ञान, योग-ज्योतिष, देव-ज्योतिष, स्वरोदय इत्यादि गूढ़ विद्याओं पर उनका पूर्ण अधिकार है। पर इन असीम शक्तियों के होते हुए भी उनमें अहंकार का लेश नहीं है। संयम और माधुर्य उनकी प्रधान विशेषताएँ हैं।

उपदेश का सार

उनका प्रधान उपदेश यह है—

"प्रेम के बिना भगवत्प्राप्ति नहीं हो सकती; शुद्धा भक्ति की परिणति से ही प्रेम का उदय होता है। जिस भक्ति की दृष्टि स्वार्थ-साधन की ओर है, जिसकी जड़ में कामना का बीज है वह कभी प्रेम के रूप में परिणत नहीं होती। वस्तुतः उसको भक्ति कहना ही उचित नहीं है। ऐसी भक्ति से तो यथासम्भव दूर रहना ही साधक का कर्तव्य है।

शुद्धाभक्ति के उदय के लिए ज्ञान का विकास आवश्यक है। केवल ग्रन्थों के अध्ययन से जिस ज्ञान की प्राप्ति होती है, वह तो

शुष्क ज्ञान है। उसे असली ज्ञान नहीं कहना चाहिए। यथार्थज्ञान का उद्भव चित्तशुद्धि हुए बिना नहीं होता और चित्तशुद्धि कर्म-सापेक्ष है। अतएव यथाविधि सद्गुरु के आदेश को सिर चढ़ाकर उनके दिखलाये हुए मार्ग से निष्ठा, संयम और श्रद्धा के साथ अपने चरित्रबलको पवित्र बनाये रखते हुए जो अग्रसर हो सकता है, उसको अवश्य ही असली ज्ञान प्राप्त होता है। इस कर्म को ही योगीगण योग कहते हैं, इसके विपरीत अन्य कर्मों को योग नहीं कहा जाता और वे चित्तशुद्धि में सहायक भी नहीं होते। अतएव नीति और चरित्र-शुद्धि की ओर लक्ष्य रखकर सद्गुरु के उपदिष्ट मार्ग से निरन्तर योगाभ्यास रूप दीर्घकाल व्यापी कर्म कर सकने पर ही चित्तशुद्धि और आत्मज्ञान का विकास होता है। तब हृदय-ग्रन्थि खुल जाती है, समस्त संशय छूट जाते हैं और जन्म-जन्मान्तर की सञ्चित कर्मराशि का क्षय हो जाता है। इस अवस्था में अविद्या की आंशिक निवृत्ति के कारण ही आत्मशक्ति का स्फुरण आरम्भ होता है। यही योगविभूति की सूचना है। इसके बाद परमात्मा के अहैतुक नित्य आकर्षण के प्रभाव से विशुद्ध जीव क्रमशः आगे बढ़ता हुआ उनके निकट पहुँचता रहता है और परममङ्गल मय ऐश्वरिक विभूति का आस्वादन प्राप्त करता है। ज्ञान का परिपाक अथवा भक्ति का विकास इस एक ही भूमि के नामान्तर हैं। इसके बाद आत्मसमर्पण के पूर्ण होते ही प्रेम का आविर्भाव होता है। इसीसे भगवत्प्राप्ति की सूचना है। पूर्ण साधनमार्ग के किसी भी अंश की अपेक्षा करने

से काम नहीं चलता। अवस्था और अधिकार-भेद से सभी की उपकारिता है। अतएव साधना-मात्र का ही मूलमंत्र कर्म है। कर्म या पुरुषार्थ का आश्रय लेने पर दैव-बल अपने-आप ही आ जाता है। तब फिर भगवान् के अनुग्रह के लिए प्रार्थना करने की आवश्यकता नहीं रहती। अवश्य ही पूर्व-जन्म में किये हुए कर्म के फल से किसी-किसी के प्रथम अवस्था में ही उन्नत भाव का विकास देखने में आता है। परन्तु इससे सिद्धान्त में कोई व्यतिक्रम नहीं होता। इतनी बात याद रखनी चाहिए कि भगवान् की इच्छा ही मूल है। अतएव कर्म को मूल बतलाने पर भी प्रकारान्तर से कर्म के मूल में भी उन्हीं का अनुग्रह होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। परन्तु अज्ञान अवस्था में अनुग्रह की अनुभूति नहीं होती, इसलिए आत्माभिमान प्रबल रहता है; अतएव कर्म के भाव को ही प्रबल मानकर चलना पड़ता है। ज्ञान का उदय होने पर यह बात समझ में आजाती है कि समस्त विश्व ही उनकी लीला है अर्थात् उनकी इच्छा-शक्ति का खेल है। जीव केवल इस अभिनय का एक निष्क्रिय द्रष्टा मात्र है।'†

❀ ❀ ❀ ❀

श्री उपेन्द्रचन्द्र दत्त महोदय ने 'कल्याण' के योगाङ्क में 'कुछ योगियों के विषय में मेरी व्यक्तिगत अभिज्ञता' शीर्षक एक लेख लिखकर प्रकाशित कराया है। इस लेख में अपने संसर्ग में आये

---

†'कल्याण' के 'योगाङ्क' में प्रकाशित महामहोपाध्याय कविराज गोपीनाथ एम० ए० के लेख से संकलित।

हुए कुछ योगियों का वर्णन उन्होंने किया है। इस वर्णन में आई हुई कुछ बातें लेखक के ही शब्दों में, पर संक्षिप्त करके, यहाँ दी जाती हैं।

२. एक गृहस्थ योगी

एक महापुरुष को मैं जानता था। प्रायः ३५ वर्ष हुए उन्होंने देहत्याग किया था। बहुत बड़े घर के लड़के थे, गृहस्थ थे, अंग्रेजी पढ़े-लिखे थे। वे ब्रह्मानन्द केशवचन्द्रसेन तथा भक्तवर विजय कृष्ण गोस्वामी के विशेष मित्र थे।

साधारण लोग उनको पागल समझते थे; क्योंकि अधिकतर वे पेड़ के नीचे पड़े रहा करते। एक दिन उनके परिचित कोई सज्जन उनसे मिलने के लिए आये; आगत सज्जन से उन्होंने उनके लड़के-लड़कियों का कुशल-मंगल पूछा। उन सज्जन के कोई पुत्र न था। उन्होंने कहा—'लड़का तो नहीं है; लड़कियाँ मज़े में हैं।' महापुरुष आश्चर्यान्वित हुए, बोले—'दयामय ने मेरे मुँह से यह बात क्यों कहलवाई?' यह कहकर वे ध्यानस्थ हो गये। ध्यान टूटने पर बोले—'पुत्र होगा। तुम आगामी शनिवार को आना। मैं एक मंत्र बतला दूँगा।' उन सज्जन ने उन्हें पागल समझकर उस ओर जाना छोड़ दिया। पर घर की स्त्रियाँ पीछे पड़ गईं। अन्त में वे सज्जन एक शनिवार को उन पागल से मिले। पागल ने उन्हें एक मंत्र लिख दिया और कहा कि आपकी स्त्री इस मंत्र का यथारीति जप करके, एक केला पेट से छुआकर जल में फेंक दे। उन दिनों वहाँ केला नहीं मिलता था। पर एक दिन (सदा की भांति) दशभुजा

के मन्दिर में दर्शन करने जाते समय उन सज्जन को मन्दिर के सामने दो केले पड़े दीखे। बहुत खोज करने पर भी केले के मालिक का पता न चला। तब मन्दिर के मालिक ने वे केले इन्हें दे दिये। पागल के आदेश का पालन किया गया।

जब उन सज्जन की स्त्री का गर्भ नौ मास का हुआ तो······ वे उन महापुरुष के दर्शन करने गये। महापुरुष ने देखते ही पूछा —'क्या पुत्र हुआ है?' उन्होंने उत्तर दिया—'अभी तो नवाँ महीना आरंभ हुआ है।' 'दयामय ने मेरे मुँह से यह बात क्यों कहलवाई?' यह कहकर महापुरुष ने ध्यान लगाया। ध्यान-भङ्ग होने पर बोले—'इसी महीने में पुत्र होगा। आगामी शनिवार को होना ही अच्छा है।' आश्चर्य है कि उसी शनिवार को पुत्र उत्पन्न हुआ।······बचपन में वह लड़का जब सो जाता तब भगवान् के नाम का जप करता—बहुत बार एक प्रकार के भावावेश में रहता। परन्तु उम्र बढ़ने के साथ-साथ संसर्गदोष के कारण वह बातें फिर नहीं देखी गईं।

एक दिन ख़बर मिली कि महापुरुष ने बताया है कि मैं अमुक तारीख़ को देहत्याग करूँगा। सचमुच उन्होंने उसी दिन देहत्याग किया। केवल इतना कह गये कि तीन दिन तक, देह को समाधि न दी जाय। तीन दिन बाद उनकी सहधर्मिणी ने शरीर त्याग किया। दोनों को एक साथ समाधि दी गई। इस युगल-समाधि के ऊपर एक विशाल मन्दिर बना है।······यह जिनकी बात है उनके पिता और पुत्र भी दोनों महापुरुष थे।

३—अद्‌भुत समाधि

माताजी का भाव अद्भुत है; सदा मानों आनन्द में डूबी रहती हैं। शिशु की भाँति सरल हैं। उसका चेहरा शान्त, प्रदीप्त, स्निग्ध और स्थिर है।

एक दिन प्रातःकाल सुना कि वे सारी रात योगासन में थीं, भोर के समय समाधिस्थ हुई हैं—मुख पर दिव्य भाव है, कभी-कभी निश्वास बन्द होजाता है। घंटे के बाद घंटा बीतने लगा, अवस्था में कोई परिवर्तन नहीं। बारह बजे से लोग थोड़ा घबड़ाने लगे; समाधि तोड़ने के लिए कान में भगवान् के नाम का उच्चारण आरम्भ हुआ। कुछ समय बाद दोनों नेत्रों से धारा बहने लगी। ·····उसके बाद सारा मुखमण्डल आनन्द से उत्फुल्ल हो उठा। मेरे मनमें आया—अश्रुपात और रोमाञ्च तो हुआ, अब शायद कम्प होगा। इतने में ही उनके सर्वाङ्ग में कम्प शुरू हो गया। इस तरह अश्रुपात, पुलक और कम्प एक के बाद एक होने लगा।··· उसके बाद अन्तर्बाह्य दशा होने लगी, बाह्य ज्ञान हो आता था और फिर वे अचेतन हो जाती थीं। इस प्रकार कुछ समय तक द्वन्द्व चलने के बाद हठात् मुख खुल पड़ा। उदात्त और अनुदात्त छन्द में वेद मंत्र अबाधगति से मुँह से निकलने लगे। बग़ल में एक महामहोपाध्याय पण्डित थे; उनसे पूछने पर मुझे मालूम हुआ कि ये सब मन्त्र वेद से भी लुप्त हो गये हैं; ऋषि-मुख से पुनः निकल रहे हैं। यहाँ पर यह जानना ज़रूरी है कि माताजी विशेष पढ़ी-लिखी नहीं थीं—वेद उन्होंने कभी पढ़े नहीं थे।···माताजी

की दो अवस्थाएँ हैं—एक आनन्दमय, आनन्द में ही हँसती और रोती हैं; दूसरी अवस्था अनिर्वचनीय है—बतला नहीं सकतीं; शेषोक्त अवस्था बीच-बीच में होती है।

४—असाधारण शक्तिशाली महात्मा

एक महात्मा की शक्ति असाधारण है। बारह वर्ष की उम्र में किसी महात्मा की कृपा से उन्हें एक अद्भुत शक्ति प्राप्त हो गई, जिसके बल से वे स्थूलदेह से सूक्ष्म देह को पृथक करके विश्व के विभिन्न स्थानों में, ग्रह-उपग्रहों में इच्छानुसार विचरण कर सकते हैं। मृत-देह की तरह शरीर पड़ा रहता है; देही सूक्ष्म और कारण-शरीर का अवलम्बन कर स्थूल, सूक्ष्म और कारण जगत् में आते-जाते हैं। दूरवर्ती स्थान की ख़बर पूछने पर अपने योग के द्वारा वे ठीक-ठीक ख़बर ला देते हैं—ऐसा देखा गया है, सूक्ष्म जगत् में घूमते समय एक ही साथ बहुत-से शरीर धारण किये जासकते हैं। बहुत बार दशों दिशाओं में दश शरीर चले जाते हैं—फिर एक साथ आकर मिल जाते हैं। स्थूल देह के किसी दुःख या आशंका का कारण होने पर सूक्ष्म देह तुरन्त स्थूलदेह में प्रवेश कर जाती है। दोनों देहों में गूढ़ सम्बन्ध है। वे अपने पूर्व और पर जन्म को जानते हैं और दूसरों के भी जान सकते हैं।"

❀ ❀ ❀ ❀

५-एक सिद्ध पुरुष का दर्शन

चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसादजी शर्मा इसी विशेषाङ्क में अपने उपर्युक्त शीर्षक के लेख में लिखते हैं:—

·····यह घटना उस समय की है जिस समय मेरी उम्र लग-भग १७ वर्ष की थी और मैं इटावे के 'ह्यूम्स हाई स्कूल' के दूसरे (आधुनिक नवें) दर्जे में पढ़ता था। उस समय मि० सी० प्लेट्स हेडमास्टर थे। वे क्रिकेट के बड़े शौक़ीन थे।·····क्रिकेट फ़ील्ड शहर के बाहर था। वहीं मैचें होती थीं। उन दिनों इन पंक्तियों के लेखक के कुटुम्ब के एक पितृव्य इटावे के रेलवे-स्टेशन पर तार बाबू थे। उनका नाम था चौबे मदनमोहनजी।

डाकगाड़ी शाम को इटावे के स्टेशन पर पहुँचा करती थी। अतः फील्ड से लौटते समय मैं अपने संगी-साथियों के साथ कभी-कभी स्टेशन पर ट्रेन के समय जाया करता था। उस समय इटावे के बुकिंग आफ़िस में एक बंगाली बाबू काम करते थे। उनके पास एक बंगाली साधु आकर ठहरे। एक दिन अचानक मेरा परिचय उन साधु से होगया। साधु महाराज के चेहरे पर शान्ति और प्रसन्नता सदा विराजती थी।······

एक दिन मैं उन बंगाली साधु के पास अपने दो सहपाठियों सहित बैठा था कि इतने में बंगाली बुकिंग क्लर्क ने बंगाली भाषा में उन साधु से कुछ कहा। बंगाली बाबू ने जो कुछ कहा वह तो मैं न समझ सका, किन्तु उनके कातर स्वर से मैं जान गया कि बाबू पर कोई भारी सङ्कट है।

·····बंगाली बाबू की कातरवाणी सुन मैं विचलित हो उठा था। अतः शिष्टाचार का विचार त्याग मैंने साधु से पूछा—'बंगाली बाबू दुखी हो क्या कह रहे हैं ?' साधु ने उत्तर दिया—'इनके एक

पाँच वर्ष का पुत्र है। वह आज बसन्त (चेचक) रोग से अत्यन्त पीड़ित है। इसी से बाबू आज अत्यन्त कातर हो रहे हैं।' इस पर मैंने बिना कुछ सोचे-विचारे झट कह दिया—'आप साधु हैं; आप का व्रत परोपकार है। ऐसे संकट के समय आपको अपने अनुरक्त भक्त का संकट दूर करना ही होगा।' यह सुन साधु खिल-खिलाकर हँस पड़े और बोले—'अच्छा चल। देख, मैं अभी संकट दूर कर रहा हूँ।' साधु के पास एक-मात्र कम्बल था। उसे ले वे चल खड़े हुए। बंगाली बाबू, मैं और मेरे दोनों सहपाठी साधु के पीछे हो लिये। रेलवे क्वार्टर में बंगाली बाबू रहते थे। क्वार्टर के द्वार पर पहुँचकर, उस साधु ने हमको साक्षी बनाने के उद्देश्य से हिन्दी में बंगाली बाबू से कहा—'सिंघी देख ! तेरा बालक अभी अच्छा हो जाता है, किन्तु तुझे एक प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी बोल, प्रतिज्ञा करेगा ?'

सिंघी बाबू ने कहा—'महाराज ! आप जो कहेंगे, मैं वही करूँगा।' साधु ने कहा—'तुझे और कुछ नहीं करना होगा, केवल यही कि मैं सामने के पीपल वृक्ष के नीचे तीन दिन कम्बल ओढ़े पड़ा रहूँगा। तीन दिनों तक न तो तू, न अन्य कोई जन मुझे छोड़े।'

सिंघी बाबू ने कहा—'बहुत अच्छा।'······भीतर जाकर देखा एक खटोले पर बालक अचेत, नेत्र बन्द किये, पड़ा है। उसके सारे शरीर पर बड़े-बड़े फफोले थे। नेत्रों और कानों पर भी। जिनमें मवाद पड़ गया था।···साधु मन ही मन बड़बड़ाते

बालक के खटोले के चारों ओर घूमने लगे।…… कम-से-कम दस मिनट तक वे खटोले की परिक्रमा करते रहे। तदनन्तर वे द्रुत वेग से पीपल-वृक्ष की ओर चले। हम लोग भी उनके पीछे लगे हुए थे।

वृक्ष के नीचे पहुँच हम लोग साधु की दशा देख आश्चर्य में डूब गये। देखा उनके सारे शरीर पर वैसे ही बड़े-बड़े फफोले पैदा हो गये हैं, जैसे कि हमने कुछ ही क्षण पूर्व बालक के शरीर पर देखे थे। साधु ने हाथ से हम लोगों को चल देने का संकेत किया और स्वयं कम्बल ओढ़े एवं दक्षिण की ओर सिर करके पीपल-वृक्ष के नीचे लेट रहे।

हम लोग वहाँ से चल दिये। रास्ते में देखा कार्टर के द्वार पर सिंघी बाबू अपनी स्त्री के साथ प्रसन्नवदन खड़े हैं। यह देख मैंने उनसे पूछा—'कहिए बाबूजी! बालक अब कैसा है?' इस प्रश्न के उत्तर में वे मेरी बाँह पकड़ मुझे कार्टर के अन्दर ले गये, जहाँ वह बालक पड़ा था। उसकी दशा देख मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। देखा बालक के शरीर पर फफोले की कहीं गूत तक नहीं रह गई है।……

मेरे चित्त पर उन साधु के अद्भुत कृत्य का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा और अब मैं नित्य स्टेशन जाने लगा। तीन दिनों तक साधु बिना मुँह खोले मुर्दा की तरह चुपचाप उसी पेड़ के नीचे पड़े रहे। चतुर्थ दिवस शाम को जब मैं स्टेशन गया तब देखा स्टेशन-प्लेट-फार्म की एक बेंच पर साधुजी पूर्ववत् प्रसन्नवदन बैठे हैं।……

तीन दिन पूर्व जिनके शरीर पर भयङ्कर माता के फफोले देखे थे, आज वे ही शान्त धीर बने हुए बेंच पर बैठे पूर्ववत् हँसकर मुझ से बातें कर रहे थे। यह देख मेरा मन आश्चर्य-सागर में निमग्न हो गया।......उस दिन से मैं बिना नाग़ा उस साधु के पास जाने लगा।......धीरे-धीरे माघी मौनामावस आई। सूर्यास्त होने को लगभग दो घण्टे शेष थे। साधु ने कहा—'चलो ! काली माई के दर्शन कर आवें।' इटावे में यमुना के तट पर निर्जन बन में काली का एक स्थान है जिसको लोग काली वापी कहा करते थे। चैत्र की नवरात्रि में यहाँ दर्शनार्थियों का मेला-सा लगा करता है।......

जिस समय मुझसे साधु ने दर्शनार्थ चलने को कहा उस समय स्टेशन का एक कायस्थ बाबू भी संयोगवश हम लोगों की बातें सुन रहा था। वह आस्तिक विचारों वाला था। उसकी भी इच्छा दर्शन करने की हुई। उसने बड़े आग्रह के साथ कहा—'बाबाजी ! मैं भी चलूँ ?' इस पर साधु चुप रहे......। बाबू ने कई बार अपना प्रश्न दोहराया किन्तु साधु को इस पर कुछ उत्तर न देख मुझसे न रहा गया। मैंने अनखाकर बाबू से कहा—'अरे भाई ! इसमें पूछने की क्या बात है ? तुम बाबाजी के कन्धों पर तो चलोगे नहीं, चलोगे अपने पैरों से। चलो, तुम भी दर्शन कर आना।' मेरी इन बातों को सुनकर भी साधु चुप रहे और चल दिये। मैं और बाबू उनके पीछे हो लिये।

चलते-चलते हम उस समय देवी के मन्दिर के निकट पहुँचे

जिस समय सूर्यदेव अस्ताचलगामी हो चुके थे......वह स्थान एक दम नीरव था......बाबू और साधु तो सीधे देवीजी के मंदिर में घुसे चले गये किन्तु मैं मन्दिर के समीप बने एक चबूतरे पर पाल्थी मारकर बैठ गया और भगवान् की स्तुति के लिए कतिपय श्लोक उच्च स्वर से देवीजी को सुनाने लगा। इतने में निशा के अन्धकार ने उस स्थान पर चारों ओर से अपना साम्राज्य जमाना आरम्भ किया। इतने में परिक्रमा कर बाबूजी मेरे निकट चबूतरे पर आ बैठे। हम दोनों साधु के दर्शन कर लौट आने की प्रतीक्षा करने लगे।......कुछ देर की प्रतीक्षा के बाद साधुजी की मन्दिर-परिक्रमा की क्रिया पूर्ण हुई; किन्तु दूसरे क्षण ही वे मन्दिर के पश्चिम में खड़े एक पीपल के वृक्ष की परिक्रमा करने लगे। इस बार कोरी परिक्रमा ही न थी बल्कि परिक्रमा करते हुए साधु उलूक-जैसी बोली भी उच्च कण्ठ से बोल रहे थे। इससे मुझे बड़ा भय मालूम पड़ा।......अमावस की रात तो थी ही, इतने में काफ़ी अन्धेरा छा गया था। हम दोनों ने मन्दिर के पीछे यमुना के कछार में देखा कि जैसा नाटक के रङ्गमंच पर राल उड़ाने पर प्रकाश का भभूका उठता है, वैसा ही प्रकाश का भभूका रह-रहकर उठता है। उस समय हम दोनों की कल्पना यह हुई कि यमुना-तट पर मुर्दा जल रहा है, उसका प्रकाश पवन के झकोरे के कारण रह-रहकर हो रहा है। हम दोनों इसी ऊहापोह में थे कि इतने में मन्दिर के पीछे देखा कि एक साधु खड़ाऊँ पहने मन्दगति से चले आ रहे हैं। उनके शरीर से उत्पन्न प्रकाश में हमने देखा कि उनका शिर

और मुख शुभ्रकेशराशि से आच्छादित है। शरीर मुट्ठी भर हड्डियों का समूहमात्र है। दोनों भौंहों के ही नहीं प्रत्युत नेत्रों की बन्नियों के बाल भी चाँदी की तरह सफ़ेद हैं। ऐसी अद्भुत और अदृष्टपूर्व मूर्ति को देख, मेरी तो बोलती बन्द होगई और शरीर पसीने से भीग गया। किन्तु मेरे साथी बाबू साहब ने मेरे शरीर को झकझोर कर ज़ोर से कहा—'देखो-देखो वह साधू।' बाबू का यह कहना था कि वह मूर्त्ति अन्तर्धान हो गई। फिर वही अन्धकार और सन्नाटा छा गया। इस सन्नाटे को भंग करता हुआ हमारे साथी साधु का क्रन्दन-स्वर सुन पड़ा। जैसे कोई अबोध बालक रोता हो वैसे ही साधु रो रहे थे।······चलते-चलते जब हम······ चुंगी की चौकी के सामने पहुँचे तब मुझी को सम्बोधन कर साधु ने कहा—'बच्चा देखा ?' मैंने क्यों इसे चलने की सहमति नहीं दी थी। मैं आज के दिन की प्रतीक्षा में गत दो मास से इटावे में ठहरा हुआ था। आज उन महात्मा से भेंट होने की बात थी। किन्तु इसने ऐसी बाधा दी कि मेरी समस्त आशाओं पर पानी फिर गया।' यह कह वे साधु फिर फूट-फूटकर रोने लगे।··· मैंने पूछा—'महाराज! ये कौन महापुरुष थे ?' उत्तर में साधु ने कहा—'ये एक सिद्धपुरुष हैं। एक सिद्ध पुरुष के कहने से ही मैं इनके दर्शनार्थ इटावे आया था। अब इनके दर्शन होना मुझे असंभव जान पड़ता है। तू अपने को बड़ा भाग्यवान समझ कि तुझे इनके दर्शन तो हो गये नहीं तो इनके दर्शन होने ही संभव नहीं।

दूसरे दिन जब मैं नियत समय पर स्टेशन पहुँचा तो पता चला कि वे साधु रात से ही गायब हैं। कहाँ गये, कुछ पता नहीं।"

६. योगीन्द्र श्रीशीलनाथ महाराज

यह नाथ-सम्प्रदाय के एक अच्छे योगी हुए हैं। अभी १८-२० वर्ष पूर्व जीवित थे। जयपुर राज्यान्तर्गत किसी क्षत्रिय जागीरदार के पुत्र थे। पर बचपन से योग और वैराग्य की ओर उनकी प्रवृत्ति थी। ज्यों-ज्यों अवस्था बढ़ती गई वैराग्य बढ़ता गया। जङ्गल में चले जाते और कई दिनों तक बिना खाये-पिये भगवान् के ध्यान में रत रहते थे। धीरे-धीरे इनको अनहत्-नाद सुनाई देने लगा। उसी आनन्द में मग्न रहने लगे। तब इनकी आयु केवल ६-१० वर्ष की थी। कुछ समय बाद इनको एक महापुरुष मिलगये जिनसे इन्होंने योग की दीक्षा ली। बाद में तो इन्होंने पेशावर, काबुल, क़ंधार, बुख़ारा, चीन, बर्मा तथा भारत के विभिन्न स्थानों की दो बार यात्रा की। दिन-दिन योग में निष्णात होते गये। कालान्तर में इनमें अनेक सिद्धियों का प्रकाश हुआ।

गुप्त होकर प्रकट हो जाना, आकाश में उड़ना, एक से अनेक हो जाना, संकल्प करते ही जी चाहे जहाँ विचरना, जलादि के ऊपर चलना इत्यादि अनेक सिद्धियाँ इन्हें प्राप्त थीं। पर इन सिद्धियों को वह विशेष महत्व न देते थे। ज्ञान के आगे सिद्धियों को तुच्छ तथा आवागमन का कारण बताते थे। एक कौपीन मात्र धारण कर धूनी तापा करते थे। इनकी धूनी सदैव प्रज्वलित रहा करती और उसे तीनों ऋतुओं में एक-सी रखते थे। बिल्कुल मैदान में

धूनी लगाते थे; वृक्षादि का सहारा भी नहीं लेते थे। जब कोई अपरिचित मनुष्य आता और तटस्थ लोग उससे पूछते कि कहाँ से और क्यों आये हो तो यह प्रथम ही उसका नाम-धाम-काम बता देते थे। इनकी धूनी के पास प्रायः सिंह आदि विचरा करते थे पर किसी भक्त पर चोट नहीं किया। बड़े ही मृदु स्वभाव के के थे। हिन्दू, मुसलमान, अंग्रेज़, ईसाई तथा आर्य-समाजी सभी इनपर प्रेम एवं श्रद्धा रखते थे। संवत् १९७७ विक्रमी के चैत्र मास कृष्ण पक्ष त्रयोदशी गुरुवार को इन्होंने ऋषिकेश में समाधि ले ली।

७-महात्मा तैलङ्ग स्वामी

काशी के वृद्ध जन जानते हैं कि उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में वहाँ तैलंग स्वामी नामक एक महात्मा रहते थे। वह परमसिद्ध योगी और जीवन्मुक्त पुरुष थे। यह प्रसिद्ध योगी श्री भगीरथ स्वामी के शिष्य थे। बचपन से यह परमपुरुषार्थ के लिए विकल थे। बीस वर्ष साधना करने के पश्चात् इन्होंने भगीरथ स्वामीजी से दीक्षा ली और उन्हीं के साथ पुष्कर आये। गुरु ने इनका नाम गणेश स्वामी रखा। पर दो वर्ष बाद गुरु ने भी शरीर त्याग किया। तब यह तीर्थ यात्रा के लिए निकले। रामेश्वरम्, सुदामापुरी, नेपाल मानसरोवर, नर्मदा तीर और प्रयाग इत्यादि स्थानों में बहुत दिनों तक साधना करते रहे। जब लोग इनकी शक्तियों के कारण इनके पास जुटने लगते तो यह वहाँ से चल देते थे। अन्त में काशी आये। काशी में भी कई स्थान बदले पर यहाँ से फिर कहीं न गये। अन्तिम समय में यह पंच-गंगा घाट

पर रहते थे। काशी आये तब इनका नाम न जानने तथा तैलंग देश का होने के कारण लोग इन्हें तैलंग स्वामी के नाम से पुकारने लगे और वही नाम प्रसिद्ध हो गया। कहते हैं कि इन्होंने २८० वर्ष की आयु में शरीर-त्याग किया! इन्होंने पहले ही अपने भक्तों से अपने महाप्रस्थान की बात कह रक्खी थी। यथा समय सब भक्तों ने एकत्र होकर गुरु का आशीर्वाद लिया। और इनकी आज्ञानुसार इनके शव को बक्स में बन्द करके गंगाजी की बीच धार में डुबा दिया। जिस स्थान में यह रहा करते थे वहाँ इनकी एक मूर्ति है जिसकी नित्य पूजा होती है। इनमें अनेक सिद्धियाँ थीं। कहते हैं, एक बार प्रयाग में इन्होंने एक आदमी के देखते-देखते आँधी-पानी के कारण आदमियों से भरी एक नाव को गंगाजी में डूब जाने पर पुनः निकाल लिया। उस आदमी के आश्चर्य प्रकट करने पर बोले—'इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। ऐसी शक्ति सब मनुष्यों में है। परन्तु प्रायः सब लोग अनित्य संसार-सुख के पीछे पड़े रहते हैं, अपनी उन्नति की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। भगवान् यह मनुष्य-शरीर बनाकर स्वयं इसमें विराजते हैं; प्रत्येक मनुष्य के अन्दर ईश्वरी शक्ति भरी है। मनुष्य जितना परिश्रम संसार के लिए करता है, उसका शतांश भी यदि वह भगवान् के लिए करे तो वह उसे प्राप्त कर सकता है। और उस समय उसके लिए संसार में कुछ भी असंभव नहीं रहेगा।'

यह सर्वस्व-त्यागी महात्मा थे। अन्त में इन्होंने कौपीन का भी त्याग कर दिया था। काशी में एक बार एक अँग्रेज़ अफ़सर ने

इन्हें नंगा रहने के कारण हवालात में बन्द कर दिया। सवेरे देखा गया कि हवालात का ताला बन्द है और स्वामी जी हँसते हुए बाहर टहल रहे हैं। पूछने पर इन्होंने कहा—'ताला-चाभी बन्द कर देने से ही किसी का जीवन नहीं बाँधा जा सकता। अगर ऐसा हो सकता तो मृत्युकाल में हवालात में बन्द कर देने से मनुष्य मौत के मुँह से ही बच जाता।'

८-हिमालय के एक योगी

४-५ वर्ष पहले स्वामी माधवतीर्थ जी दण्डी हिमालय के अन्तरंग प्रदेश में गये थे। उन्हें वहाँ एक महात्मा के दर्शन हुए थे जिसका वर्णन उन्होंने काशी के बङ्गला पत्र 'पन्था' में प्रकाशित कराया था। उसका मर्म 'कल्याण' में भी निकला था। यहाँ संक्षिप्त रूप में दिया जाता है।

"इस शरीर ने गौरी-गिरि की परिक्रमा करने के लिए अक्षय-तृतीया के दिन काठगुदाम से यात्रा की।······और भी दो-एक पहाड़ी गौरी के दर्शन के लिए जा रहे थे। उनसे मुलाक़ात होने पर इस शरीर ने पूछा कि यहाँ कोई साधु महात्मा हैं कि नहीं। हैं तो कहाँ? उन लोगों ने अँगुली से इशारा करके तीन-चार स्थान दिखा दिये। वे सब प्रायः ३-४ कोस की दूरी पर थे। फिर पास में एक स्थान दिखाकर उन्होंने कहा कि उस पहाड़ पर कभी-कभी एक महापुरुष आकर रहते हैं। वह स्थान भी बहुत ऊँचा था पर महापुरुष के दर्शन की आकांक्षा अत्यन्त बलवती होने के कारण इस शरीर ने उस पहाड़ पर चढ़ना शुरू कर दिया। वहाँ

पहुँचने पर महात्मा के दर्शन मात्र से ऐसा मालूम हुआ कि आप कोई महापुरुष हैं।

एक छोटी-सी गुफ़ा में वे महात्मा पद्मासन लगाकर बैठे थे। नेत्र बन्द थे; श्वास भी कदाचित् बन्द था।......झोला-कम्बल रखकर 'नमो नारायण' का उच्चारण करते ही उन्होंने नेत्र खोलकर इस शरीर को देखा और उसी क्षण पुनः नेत्र बंद कर लिये।

उस समय मध्यान्ह का समय प्रायः बीत चुका था। सूर्यदेव पश्चिमाकाश में ढल चुके थे। प्रातःकाल से पर्वत पर चढ़ते-चढ़ते यह शरीर भूख-प्यास से क्लान्त हो रहा था।......झोला कम्बल वहीं रखकर झरने में हाथ मुंह धोकर दो अंजुली पानी पीते ही शरीर बहुत-कुछ स्वच्छ हो गया। कम्बल बिछाकर गुफ़ा के बाहर आसन लगाकर यह शरीर आराम करने लगा।...अन्य दिनों झोले में चने का सत्तू और गुड़ रहता था पर आज वह भी न था।...उस समय शरीर भूख के मारे व्याकुल था।

जहाँ पर यह शरीर था वहाँ से बहुत दूर तक दिखाई देता था।...घूमती-फिरती एक सफ़ेद गाय महात्मा की गुफ़ा के द्वार पर आकर, पीछे के दोनों पैरों को चौड़ा फैलाकर खड़ी हो गई। उस समय महात्मा ने नेत्र खोलकर मुस्कराते हुए गाय की ओर देखा। गाय के एक थन से खूब बारीक धार से दूध झरने लगा। यह शरीर जैसे मन्त्र द्वारा चालित हो, वैसे अपने आसन से उठ खड़ा हुआ। महात्मा के आसन के पास काठ का एक बड़ा-सा जलपात्र

उलटकर रखा था। उसे उठाकर इस शरीर ने गाय के थन के नीचे रख दिया, उस समय गाय के चारों थनों से दूध अबाध गति से उस पात्र में झरने लगा। देखते-देखते वह भर गया। प्रायः ४-५ सेर दूध होगा महात्मा के सामने वह रखा गया। इस शरीर के साथ जो जलपात्र था वह भी थन के नीचे रखा गया। तब महा-पुरुष ने माइ! माइ! कहकर दो बार उच्च स्वर से पुकारा। उसके क्षण भर बाद हवा का शब्द सुनाई पड़ा, मानों दूर से आँधी आती हो। यह शब्द कहाँ से आ रहा है, कुछ समझ में नहीं आया। क्षण भर बाद मालूम हुआ कि महापुरुष की नासिका से श्वास बाहर निकल रहा है। देखते-देखते उनका स्थूल शरीर अत्यन्त कृश हो गया। उसके बाद वह पहले पात्र का सब दूध पी गये। इस बीच दूसरा पात्र भी भर गया और उसका दूध भी वह पी गये। पुनः उनका पात्र थन के नीचे रखा गया और उसके भर जाने पर उसका दूध भी उन्होंने पान किया।.....फिर मुझे दूध पीने का इशारा हुआ। आदेश पाते ही पेट-भर दूध पिया। अपूर्व स्वाद था; दूध के ऐसे रस-माधुर्य का अनुभव और कभी न हुआ था।...सन्ध्या से पहले वह आसन से उठकर झरने की ओर गये। जहाँ पर यह शरीर था वहाँ से झरने तक अच्छी तरह दिखाई पड़ता था। वहाँ से वह अदृश्य हो गये। किसी ओर जाते हुए दिखाई न पड़े।...बहुत खोज की गई परन्तु फिर दर्शन नहीं हुए।'

: १० :

श्री निगमानन्दजी के आश्चर्यजनक अनुभव

श्री श्री स्वामी निगमानन्दजी महाराज का नाम आसाम और बङ्गाल में बहुत प्रसिद्ध है। अभी तीन ही वर्ष पहले इनका देहावसान हुआ है। इन प्रदेशों में इनके सैकड़ों शिष्य हैं। इनके स्थापित किये हुए कई आश्रम और मठ चल रहे हैं। इन्होंने योग-विद्या की विविध शाखाओं के सम्बन्ध में बङ्गला में कई ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें से कई के पाँच-पाँच सात-सात संस्करण हो चुके हैं। दो-एक पुस्तकों का हिन्दी-अनुवाद भी इनके प्रिय शिष्य और साधक ब्रह्मचारी श्री गोपालचैतन्य देवजी की कृपा से उपलब्ध है। गोपालजी की लिखी संक्षिप्त जीवनी के आधार पर उनकी जीवन-कथा यहाँ दी जा रही है—

यह एक श्रेष्ठ योगी और जीवन्मुक्त महात्मा थे। इनका जन्म संवत् १९३५ श्रावण की झूलन पूर्णिमा को रात के दो बजे नदिया ज़िले (बङ्गाल) के कुतुबपुर नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम भुवनमोहन भट्टाचार्य और माता का माणिक सुन्दरी था। इनके पिता स्वयं योग के अच्छे साधक तथा योगी भास्करानन्द

महाराज के शिष्य थे। श्री निगमानन्दजी का नाम श्री नलिनीकांत भट्टाचार्य था।

बचपन में इनके जीवन में कोई ऐसी विशेषता न दिखाई पड़ती थी जिससे इनके भावी जीवन का कुछ आभास मिलता। उल्टे वह नास्तिक थे और पुनर्जन्म इत्यादि को मिथ्या गपोड़ा मानते थे। पर बड़े होने पर एक ऐसी घटना इनके जीवन में घटी कि इनके विचार बदल गये। घटना यों है—

इनकी स्त्री मर चुकी थी। यह नारायणपुर कैंप में सेटलमेण्ट के काम पर नियुक्त थे। अचानक देखा कि टेबुल के पास उनकी मृत स्त्री खड़ी है। फिर-फिर आँखें फाड़-फाड़कर देखा—मूर्ति अचल है। उसका मुख मलिन है और आकृति विषादपूर्ण है।

बस उस दिन से उनके मन में परलोकतत्त्व की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। वह थियोसाफ़िकल सोसायटी में शामिल हो गये। उन्होंने स्पिरिच्युएलिज्म (प्रेततत्त्व) का अभ्यास शुरू किया और कहा जाता है कि कुछ ही दिनों में प्रेतात्माओं से बातचीत करने लगे। जब इनको सफलता मिल गई तब इन्होंने सोचा कि 'मीडियम' (मध्यस्थ) को हटाकर प्रेतों से रूबरू मिलना और बातचीत करना चाहिए। इसी इच्छा को लेकर यह कलकत्ता आये। यहाँ आने पर इनकी भेंट स्वामी पूर्णानन्दजी नाम के एक महात्मा से हुई। स्वामीजी ने उपदेश किया—'तुम अपनी मृत स्त्री से मिलना चाहते हो। पर तुम्हारी स्त्री या दूसरी कोई भी स्त्री है कौन ? प्रत्येक स्त्री उस आद्याशक्ति महामाया की छाया-

मात्र है। तुम छाया के पीछे पड़कर जो शक्ति व्यय करोगे उसी शक्ति और साधना से तुम महामाया को प्राप्त कर सकोगे। तब देखोगे कि संसार में सभी कुछ तुम्हारे लिए हस्तामलकवत् है।'

जान पड़ता है, इनके संस्कार अच्छे थे। इस उपदेश से इनकी आँखों के आगे का परदा हट गया; आँखें खुल गईं। तब से सद्-गुरु को पाने की प्यास या उत्कण्ठा इनमें जग गई। यह उत्कण्ठा इतनी बढ़ी कि एक दिन इन्होंने निश्चय कर लिया कि आज गुरु-देव के दर्शन नहीं हुए तो कल सूर्योदय के साथ ही अपने जीवन का अन्त कर डालूँगा। उसी रात को एक आश्चर्यजनक घटना हुई। रात में एक महापुरुष इनकी तन्द्रावस्था में प्रकट होकर बोले—"वत्स! अपनी साधना का मंत्र लो। तुम मंत्र पाने के लिए व्याकुल हो गये हो। इसीसे हम मंत्र देने के लिए आये हैं।" आवाज़ सुनते ही आँख खुल गई। मंत्र के लिए हाथ बढ़ाया। महापुरुष की शरीर-ज्योति से वह अँधेरा कमरा प्रकाशित हो गया था। महापुरुष ने बिल्वपत्र पर लिखा हुआ मंत्र इन्हें प्रदान किया। जब महापुरुष अन्तर्धान हो गये तब नलिनीकान्त ने दीपक जला कर उस बिल्वपत्र को देखा। उसपर रक्तचन्दन से एकाक्षरी बीज मंत्र लिखा हुआ था।

नलिनीकान्त के मन में इस मंत्र की विधि और रहस्य जानने के लिए बड़ी व्याकुलता उत्पन्न हुई। घर छोड़ दिया। जङ्गलों और पहाड़ों में घूमने लगे। बहुत दिनों के निरन्तर पर्यटन के बाद भी मनोकामना सिद्ध नहीं हुई। मनमें निराशा के कारण बड़ी खीझ

हुई। सोचा निराहार रहकर प्राण त्याग दूँ। जब यह निश्चय किया तो उसी रात में फिर वही दिव्य-मूर्ति प्रकट हुई और आज्ञा दी कि 'जाकर तारापीठ के सिद्ध योगी वामा क्षेपा* से दीक्षा लो।' वामाक्षेपा अन्तर्यामी तान्त्रिक मत के सिद्ध पुरुष थे। नलिनीकान्त वहाँ गये। वामाक्षेपा ने कृपा करके उन्हें 'तारा माँ' का मंत्र दिया और आशीर्वाद किया कि तुम सफल होओगे। नलिनीकान्त केवल २१ दिन वहाँ रहे। वामाक्षेपा की कृपा से इतने ही दिनों में इन्होंने तंत्रयोग की अनेक सिद्धियाँ प्राप्त करलीं और माँ का दर्शन भी पा लिया। इन साधनाओं का श्री निगमानन्द जी ने अपने बङ्गला ग्रन्थ 'तान्त्रिक गुरु' में सविस्तर वर्णन किया है।

पर इन साधनाओं और माँ के दर्शन से भी उनके संकल्प-विकल्प नष्ट नहीं हुए। इसलिए यह फिर गुरुदेव के पास गये। उन्होंने संन्यास ग्रहण करने की आज्ञा दी। तब यह संन्यासी गुरु की खोज में निकले। बहुत दिनों तक इधर-उधर घूमने के बाद, अजमेर के निकट,पुष्कर तीर्थ पहुँचे। वहाँ उन्हें एक महात्मा के दर्शन हुए। यह वही महात्मा थे जिन्होंने स्वप्न में उन्हें मंत्र दिया था। इनका नाम परमहंस स्वामी सच्चिदानन्द था। यह एक श्रेष्ठ एवं सिद्ध योगी थे। इन्हीं से नलिनीकान्त ने संन्यास की दीक्षा ली। उसके बाद आसाम से मिले हुए चीन के प्रदेश में सिद्ध योगी बाबा सुमेरुदास जी से इन्होंने योग-दीक्षा ली। यह

---

*वामाक्षेपा या पागलवामा बचपन से ही तारा नाम का जप करके सिद्ध हो गये थे। इनको अद्भुत शक्तियाँ प्राप्त थीं।

पवन स्वरोदय शास्त्र, योगशास्त्र एवं तंत्र इत्यादि में पूर्ण सिद्ध थे और इनमें अनेक चमत्कारिक सिद्धियाँ थीं। इन्होंने जन-हित में अपना काफ़ी समय लगाया। संवत् १६६२ वि० मार्गशीर्ष शुक्ला तीज शुक्रवार को दिन में १ बजकर १५ मिनट पर कलकत्ता नगरी में यह ब्रह्मलीन हुए।

स्वयं उनके अनुभव

अपनी पुस्तक 'योगी गुरु' में श्री स्वामी निगमानन्दजी ने स्वयं अपना वृत्तान्त लिखा है। कैसे उनको गुरु मिले, इसका बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन उन्होंने किया है। उसकी भाषा ज़रा कठिन है और उसमें विस्तार भी अधिक है। मैं उसे संक्षेप में, सरल करके, यहाँ देता हूँ। वह लिखते हैं:—

"मैं तेईस वर्ष की अवस्था में प्रफुल्ल प्राण की सारी सुख-शांति, आशा-भरोसा, उद्यम-धंधा भादों से भरे भैरवनद के तीर वाले कदम्ब के नीचे भस्मीभूत करके, स्मृति की जलती हुई चिन्ता रूपी चिता छाती पर रखे घर से बाहर निकला था। बाद में कितने ही नगर, गाँव और पुरों में सुन्दर भवनों का निरीक्षण किया पर प्राणों की आग न बुझी; कितने ही नद-नदी-झील का कल-कलनाद कानों में पड़ा पर...कातरता न घटी। कितने ही पर्वत, कितने ही घाटियों की चढ़ाई-उतराई में विधाता के कौशल का विचित्र व्यापार देखा पर जीवन की ज्वाला ठंडी न पड़ी। बहुत दिनों बाद महामाया की कृपा से पुष्कर तीर्थ पर सावित्री पहाड़ पर परमहंस श्रीमत सच्चिदानन्द सरस्वती का साक्षात् दर्शन हुआ। परम ज्ञानी

परमहंस देव के उपदेश से जीव का जन्म-जन्मान्तर-रहस्य, गतागति, कर्मफल-भोग इत्यादि का गूढ़-तत्व मालूम होने पर माया का मोह छूट गया। पार्थिव पदार्थ की असारता समझ पड़ी। हृदय-कुञ्ज में कोयल ने पहली तान छोड़ी। अभूतपूर्व आनन्द में चित्त डूब गया। मैंने मन-ही-मन स्थिर संकल्प किया—"मर्त्य जगत् में फिर मदन-मरण का अभिनय करते न घूमेंगे। हम किसके हैं? कौन हमारा है? व्यर्थ बहुत रोने का झगड़ा क्यों? अकेले आये हैं, अकेले जायँगे। तब लोभ में पड़ क्यों अशान्ति की ज्वाला में जलें?" उसी क्षण हृदय की गहराई से शास्त्र का यह वाक्य फूट निकला—

पिता कस्य कस्य माता कस्य भ्राता सहोदरा:।
काया प्राणे न सम्बन्धः का कस्य परिवेदना॥

माया-मोह का आवरण बहुत दूर हट गया किन्तु प्राण में एक प्रबल प्यास जाग उठी। मैंने स्थिर कर लिया कि किसी भी एक साधक सम्प्रदाय में शामिल होकर एक सुखसाध्य साधन का अनुष्ठान करके प्रभु की लीला का स्वाद चखते हुए जीवन के शेष दिन काट डालूँगा। यह सोचकर मैं किसी सिद्ध पुरुष की खोज में लग गया। बहुत से साधु-संन्यासियों का अनुसरण किया। किसी ने धूनी की राख को चीनी बनाना बताया। किसी ने गर्म तेल में हाथ डालने का कला-कौशल दिखाया। किसी ने कपड़े में आग बाँधने की राह निकाली। किन्तु इन बातों से मेरे प्राण की प्रबल प्यास न मिटी। एक प्रसिद्ध तांत्रिक साधक का संवाद पाकर मैं

उनके पास जा पहुँचा और चेला बन नौकर की तरह सेवा करने लगा। कुछ दिन पीछे उन्होंने एक अस्वाभाविक वस्तु लाने का आदेश दिया। "शनि और मङ्गल की वज्राहत गर्भवती चाण्डाल रमणी के उदरस्थ मृत सन्तान पर आसन लगाकर मन्त्र न जपे तो तन्त्रोक्त साधना में सिद्धिलाभ होना अति कठिन है।" मैं यह बात सुनकर ही उनके पास से चल दिया। जो योगी नाम से परिचित हैं उन्होंने नेती, धोती, इत्यादि ऐसी कठिन क्रियाओं का अनुष्ठान करने का उपदेश दिया, कि हमारे वंश में कोई भी उनका अभ्यास न कर सकता। वैरागी बाबाजियों में से एक न कहा—'बेल के फल की तरह सिर बनाकर खूब लम्बी चोटी रखो, और गले की माला में पीतल के दाने डालकर काठ की माला से गुरुदत्त मन्त्र को जपो—नियमित रूप से भजन-गान और प्रति दिन थोड़ा गोपीचन्दन शरीर में न लगाने से गोपीवल्लभ कृपा न करेंगे।' फिर एक आधुनिक सम्प्रदाय के वैरागी ने शास्त्र का कितना ही सूक्ष्मांश निकाला और अपने अनुकूल कार्य बनाकर बताया—"सिवाय शक्ति के मुक्ति का और कोई भी दूसरा उपाय नहीं है।" उन्होंने दादी की अवस्थावाली एक माता भी बनाने की व्यवस्था बताई। इस हेतुवाद से श्री श्री वृन्दावन के राधाकुण्ड में रहनेवाले परोपकार-परायण एक बाबाजी अपनी अनाथा कन्या को निःस्वार्थ भाव से दान करके मेरा मुक्ति का मार्ग खोलने पर भी तैयार हो गये। किन्तु मैं बड़ा अकृतज्ञ हूँ! नहीं तो क्या ऐसे उदार-हृदय.....व्यक्ति की प्रार्थना न सुनकर भाग खड़ा होता?

पंजाब प्रदेश में रहनेवाले अमृतसर के उदासी सम्प्रदाय ने उपदेश दिया—"जनेऊ आदि छोड़कर छत्तीस जाति का अन्न खाते हुए घूमने से ही ब्रह्मभाव जाग्रत होगा।" संन्यसियों ने अखण्ड विभूति मलने, लम्बी जटा बढ़ाने, चिमटा रखने और दम लगाने का कौशल सिखाया। नागा सम्प्रादय ने नंगे रहकर कमर में जंजीर बांधने और अन्नादि छोड़कर फलमूल खाने की व्यवस्था दी। किन्तु सावित्री पहाड़ी के पूज्यपाद परमहंस देव ने पहले ही मुझे कुछ पक्का कर दिया था, इसीलिए इन सब फक्कड़ों की कोरी बातों पर मन न मुड़ा। इतने पर भी निरुत्साह न हो, जगद्गुरु योगेश्वर के चरण का स्मरण करके अपने कार्य की सिद्धि के लिए मैं फिर घूमने लगा।

पश्चिम प्रदेश में कुछ दिन भ्रमण करके मैं कामाख्या माँ के चरणों के दर्शन की अभिलाषा से, कई साधु-संन्यासियों के साथ, आसाम को गया। आसाम पहुँचने पर मन में परशुराम तीर्थ देखने की इच्छा हुई। गौहाटी से जहाज़ पर बैठकर डिब्रूगढ़ और डिब्रूगढ़ से रेल में चढ़कर सदिया जा उतरा। सदिया से कोई २०-२५ साधु-संन्यासियों के साथ दुर्गम और जङ्गली जानवरों से भरे हुए जङ्गलों तथा छोटे-छोटे पहाड़ी टीले लाँघने पर बड़े कष्ट से परशुराम तीर्थ में पहुँचा। यह तीर्थ आँखों, मन-प्राण को खिला देनेवाले सौंदर्य से पूर्ण है। शास्त्रों में लिखा है कि परशुराम ने सब तीर्थों में घूमने के बाद इसी ब्रह्मकुण्ड में स्नान करके माता को मारने के महापाप से छुटकारा पाया था। तभी से इसका

नाम परशुराम तीर्थ पड़ गया है। इस ब्रह्मकुण्ड से ही ब्रह्मपुत्र नद निकला है किन्तु आजकल ब्रह्मकुण्ड से इस नद का कोई लगाव नहीं। ब्रह्मकुण्ड पर पहुँचकर मैंने भी सब की तरह स्नान-पूजा आदि करके परिश्रम सार्थक किया और जीवन को धन्य समझा।

जिस दिन ब्रह्मकुण्ड पहुँचा, ठीक उसके दो दिन बाद मैं प्रबल ज्वर और आमाशय के रोग से पीड़ित हो गया। राह में कई दिन के अनियमित परिश्रम से मैं पहले ही कातर हो गया था। इसके बाद इस बीमारी से चार-पाँच दिन में ही उठने-बैठने की ताक़त जाती रही, साथ के संन्यासी लौटने के लिए घबड़ा उठे। मैं बड़े सोच-विचार में पड़ गया क्योंकि उस समय मेरे शरीर में एक पग भी चलने की ताक़त नहीं थी, तब कैसे उस दुर्गम भूमि और पर्वतश्रेणी को लाँघता? मैंने संन्यासियों से दो-चार दिन ठहरने के लिए हाथ जोड़कर विनती की किन्तु उसका कुछ फल न निकला। वे एक रात मुझसे छिपकर, चुपके से, चलते बने।······पास ही असभ्य पहाड़ी लोगों का एक छोटा-सा गाँव था। मैंने निरुपाय हो उनसे गिड़गिड़ाकर रहनेको जगह माँगी। वे लोग साधु-ब्राह्मण को नहीं मानते किन्तु मेरी नई अवस्था और कातर शरीर देखकर, या दूसरे किसी कारण से हो, उन्होंने आदर के साथ जगह दे दी। नया देश, नये लोग और नई भाषा थी,इसीसे पहले जड़ की तरह रहने में बड़ा कष्ट हुआ किन्तु दो-तीन दिनों में मैंने उनकी भाषा सीखली। धीरे-धीरे उनसे मेल-जोल बढ़ गया; वे नौकर की तरह मेरी सेवा करने लगे। मैं उनके सद्-व्यवहार पर मुग्ध होगया।

......पूरे तौर से स्वस्थ होने में एक मास से कुछ ज्यादा वक़्त लग गया। स्वस्थ होने पर मैं बङ्गाल वापिस जाने की इच्छा से ब्रह्मकुण्ड पर गया किन्तु वहाँ पता लगा कि आगामी कार्तिक महीने के पहले सदिया जाने के लिए साथी न मिलेगा। उस घोर जङ्गल को अकेले पार करना किसी के वश की बात नहीं। इसलिए निरुत्साह होकर मैं फिर उसी पहले के आश्रयदाता के यहाँ पहुँचा। वे ख़ुशी से छः-सात महीने के लिए जगह देने पर राज़ी हो गये। कहना व्यर्थ है कि ये सारे स्थान भारत में तो हैं पर ब्रिटिश शासन के अधीन नहीं हैं।

प्रभु के चरणों का भरोसा रखकर इन लोगों के साथ एक प्रकार सुख-स्वच्छन्दता से समय काटने लगा। उनमें उदार स्वभाव, सरल प्राण, सत्यनिष्ठा, परोपकार, सहानुभूति तथा मेहमानदारी इत्यादि के जो गुण देखने में आये वे वर्तमान युग में शिक्षित और सभ्यता के अभिमानी भारतवासियों में कहाँ दिखाई देंगे। किसी भी देश और किसी भी जाति में ऐसी भद्रता और ऐसा मनुष्यत्व इस दुर्दिन में देखने को नहीं मिलेगा।......

एक जगह बहुत दिन रहने के कारण धीरे-धीरे लोगों से जान-पहचान बढ़ गई। आस-पास वाले दूसरे गाँवों के लोग भी मेरे यहाँ आने-जाने लगे। मैं भी बहुत दिनों तक बराबर एक ही जगह रहने के कारण कुछ ऊबकर नई-नई बस्तियों में घूमने लगा। इसी तरह ब्रह्मकुण्ड से कोई बीस कोस उत्तर जा पहुँचा। इस जगह समतल भूमि नहीं है, एक-पर-एक पहाड़ों की क़तार लगी है। पहाड़

के नीचे आठ-दस घर का एक छोटा गाँव बसा है। मैं प्रति दिन खाता-पीता, सोता और किसी-किसी दिन हिम्मत बाँधकर पहाड़ पर प्रकृति का सौन्दर्य देखने चला जाता। एक दिन की बात है, इसी तरह तीसरे पहर मैं घूमने निकला। वर्षाकाल था। गहरी वर्षा की आशंका से मैंने पैबन्द लगा हुआ एक टूटा छाता माँग लिया और कितने ही जङ्गलों और पहाड़ों को पार करके एक नई जगह जा पहुँचा। वह स्थान पहाड़ का एक एकान्त और सुन्दर प्रदेश था। वहाँ मनुष्य की गंध तक नहीं थी। चारों ओर पहाड़ ही पहाड़ थे; उनकी गोद में झरने बह रहे थे और झरनों की गोद में हरी-भरी वन-भूमि थी। वन-भूमि की गोद में सफ़ेद, पीले, लाल, फूल खिले हुए थे और फूलों की गोद में सुगंध और शोभा भरी हुई थी। मैं बहुत भ्रमण करने के कारण थक गया था इस-लिए इस शोभा को देखते हुए वहाँ बैठ गया और भगवान् के अपूर्व सृष्टि-रचना-कौशल और प्रकृति की विचित्र गति-विधि पर विचार करने लगा। धीरे-धीरे नदी की तरंगों की तरह कितने ही प्रकार की चिन्ताएँ मेरे मन में उठने लगीं। कितने ही देशों की बातें, कितने ही लोगों की उक्तियाँ, उनके आचार-व्यवहार, प्रेम-प्रीति, मेल-जोल, रहन-सहन और अन्त में अपनी जन्मभूमि की बातें याद हो आईं। वह लड़कपन, माता-पिता, उनके प्यार-दुलार की बात, भाई-बहन का प्यार, आत्मीय स्वजनों का स्नेह, बाल्य-बंधुओं का सरल एवं प्राणोपम सच्चा प्यार, प्रणयिनी की हृदय को मस्त बनाने वाली मधुर वाणी—इन सब बातों का स्मरण

आते ही मन में एकदम बड़ी खलबली मच गई। हृदय का दृढ़ संकल्प टूट गया, छाती धड़कने लगी, आँख से चिनगारी उठी। मुहूर्त्त मात्र में परमहंस देव के उपदेश-वाक्य तृण की तरह उस स्मृति के प्रबल स्रोत में न जाने कहाँ बह गये—दर्शन, विज्ञान, गीता, पुराणादि का शास्त्र-ज्ञान रसातल में पहुँच गया,—यहाँ तक कि अन्त में मैं आत्म-विस्मृत हो गया।

नहीं जानता, उस हालत में मैं कितनी देर रहा। किन्तु जब होश आया, तब मैंने देखा कि······सूर्यदेव अस्ताचल के शिखर पर आरोहण कर रहे हैं। संध्या हो गई थी।······महामाया के मायामोह का प्रभाव देखकर मैं आश्चर्य-चकित बन गया। विचार किया कि "मैं जो था वही बना हूँ। एक ही लहर की चोट से जब हृदय का समस्त संकल्प ढीला पड़ गया तब शास्त्रादि के ज्ञान का अभिमान वृथा है।" जो है, अब अधिक सोचने का समय कहाँ? अभी गाँव को लौटना होगा। मैंने भीतचित्त से चलना आरंभ किया। कुछ दूर चलने पर मालूम हुआ कि मैं मार्ग भूल-कर भटक गया हूँ। उस समय बन में घोर अँधेरा छा रहा था। प्राणों के भय से घबड़ाकर मैं बाहर निकलने के लिए तरह-तरह की कोशिशें करने लगा लेकिन समस्त यत्न और परिश्रम व्यर्थ गया। जिस ओर जाता केवल असीम जङ्गल और दुर्भेद्य अंधकार ही दिखाई पड़ता था। हताश होकर मैं एक स्थान पर बैठ गया। शरीर से पसीना बहने लगा। उस समय उपाय ही क्या था? उस गहरे अँधेरे में दुर्भेद्य जङ्गल को पार करना मेरी शक्ति के बाहर

था। मुझे बिल्कुल पता नहीं था कि पहाड़ के किस बग़ल में गाँव है। ऐसी दशा में अन्दाज़ लगाकर गाँव की तलाश करना भी फ़िज़ूल था। इतना ही नहीं, उस तरह निरर्थक घूमने से तो कहीं शेर-भालू के पैने दांतों की चोट से प्राणनाश तक की संभावना थी अथवा जङ्गली हाथियों के पैर तले दब जाने का सन्देह था। ......अन्त में मैंने हर हालत में उसी जगह रहने की ठानी—जो होना है, हो जायगा। विपद्-चिन्ता भय का कारण है पर विपद् में फँस जाने से आप ही हिम्मत बँध जाती है। इसलिए उस भयानक जङ्गल में अकेले बैठकर मैं प्रति क्षण मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगा। कभी मन में आता कि विकराल मुख फैलाये हिंस्र पशु मुझे निगलने आ रहा है। कभी मन में आता कि भूत, प्रेत, पिशाच पैने दांत निकाले अट्टहास से जङ्गल को हिला रहे हैं। मैं क्षण-क्षण मृत्यु की यंत्रणा भोगने लगा। तब मैंने मन में विचार किया कि ऐसी यंत्रणा भोगने की अपेक्षा तो मैं मर जाता तो अच्छा होता।......अन्त में कुछ हिम्मत बाँधी और नाना प्रकार से मन को दृढ़ करने लगा। उसी समय शास्त्रकारों का यह मधुर उपदेश स्मरण हो आया—

> मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते।
> अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः॥
>
> श्रीमद्भागवत १०-१-२६

जब एक दिन मृत्यु निश्चित ही है, तब उस मृत्यु के लिए इतना घबड़ाना किस काम का?......

इस प्रकार आप ही आप मृत्यु का भय दूर हो गया। किन्तु निश्चेष्ट होकर उस तरह बैठ रहना नितान्त कायर का लक्षण था। हाँ, वृक्ष पर चढ़ जाने से हिंस्र पशुओं से बचाव हो सकता था। मुझे वृक्ष पर चढ़ना नहीं आता था फिर भी मैं चेष्टा करने लगा। पास ही एक बड़े पहाड़ी वृक्ष की डाल प्रायः ज़मीन से लगी हुई लटक रही थी। थोड़ी चेष्टा करके मैं उस शाखा पर चढ़ गया और धीरे-धीरे काँपते हाथों उसके सहारे मूल तक जा पहुँचा।

वहाँ जाते ही मैंने एक अदृष्टपूर्व आश्चर्यजनक गह्वर देखा। वह गह्वर ऐसा अनोखा था, जैसा कभी किसी ने न देखा हो, न सुना हो। जहाँ वह शाखा पूरी हुई थी, ठीक उसी की बग़ल में तने के भीतर एक गहरा गढ़हा था। ज़रा ध्यान से देखने पर मालूम हुआ कि गढ़हे के भीतर मिट्टी भरी हुई है, और केवल एक मनुष्य आराम से उठ-बैठ सके इतनी जगह उसमें है। मैंने हिम्मत बाँधकर धीरे-धीरे खोह में प्रवेश किया और डर का कोई कारण न देख मैं नीचे बैठ गया और छाता तानकर मैंने खोह का मुँह ढक दिया। इसके बाद कुछ निश्चिन्त होकर मैंने प्रभु का धन्यवाद किया और आँख मूँदकर इष्टमन्त्र जपने लगा।...बहुत समय बाद प्रभात के लक्षण दीख पड़े।...रात-भर जागने और मृत्यु की चिन्ता से मैं बहुत घबड़ा गया था। अब निश्चिन्त होने और उषः-काल की मन्द शीतल हवा शरीर में लगने से नींद का बड़ा ज़ोर बँधा। उसी तरह बैठे-बैठे वृक्ष के सहारे मैं सो गया।

नींद टूटने पर देखा कि वनभूमि सूर्य-किरणों से चमक उठी

है।...सिर उठाकर देखा कि जिस वृक्ष पर अधिष्ठित हूँ, ठीक उसी के नीचे सूखे पत्ते जलाकर एक मनुष्य बैठा हुआ है।...दुर्गा का नाम स्मरण कर हिम्मत बाँध मैं खोह से बाहर निकला और पहली ही वृक्ष-शाखा से नीचे उतरकर उसके सामने जा खड़ा हुआ। किन्तु इस प्रकार मुझे एकाएक वृक्ष से उतरते देखकर भी वह भीत, चकित या विस्मित न हुआ। यहाँ तक की मुंह उठाकर उसने मेरी तरफ़ देखा भी नहीं। मैंने देखा कि वह सिर नीचा करके अपनी धुन में मस्त हो गाँजा मल रहा था। सिवाय कौपीन के उसके पास दूसरा कोई कपड़ा न था। उसके बग़ल में एक बड़ा चिमटा और लम्बी नली की चिलम पड़ी हुई थी। इन चीज़ों को देख उसे मैंने एक गृहत्यागी संन्यासी समझ लिया। लेकिन ऐसी पहाड़ी वनभूमि में संन्यासियों का कोई आश्रम है ऐसा तो किसी भी दिन मैंने किसी के मुंह से नहीं सुना था।...पास जाकर बैठ गया।...इसके बाद जमीन पर से चिमटा उठाकर वह खड़ा हो गया और हाथ के इशारे मुझे अपने पीछे-पीछे आने का आदेश देकर चलने लगा। मन्त्रमुग्ध की तरह मैं पीछे-पीछे चला। चलते-चलते मैंने सोचा—"मैं कहाँ जा रहा हूँ। यह व्यक्ति कौन है? इसके मन का उद्देश्य क्या है? इसका क्या कारण है कि मुझसे न कुछ पूछा, न जाँचा, बल्कि चुपचाप साथ चलने का आदेश कर दिया।" एक बार बंकिम बाबू की कपालकुण्डला* के कापालिक

---

*'कपाल-कुण्डला' बंगाल के प्रसिद्ध उपन्यासकार बंकिमचन्द चटर्जी का एक उपन्यास है जिसमें नर-बलि देनेवाले एक कापालिक का वर्णन है।

की बात स्मरण हो आई। उसी समय छाती धड़कने लगी।···
पर मैं उसके साथ-साथ चलता रहा।······

कुछ देर इसी तरह चलने पर हम एक पहाड़ी टीले के पास जा पहुँचे। वह स्थान स्वाभाविक सौन्दर्य से पूर्ण था। एक ओर पहाड़ी टीला, तीन ओर दुर्भेद्य नीलिमामय हरी-भरी भूमि। बीच में कुछ मैदान। एक छोटा-सा झरना भी टीले के बगल में मधुर शब्द करता बह रहा था। उस जगह पहुँचने पर वह साधु मेरी ओर घूमकर खड़ा हो गया। वहीं उसका यथार्थ स्वरूप देख पड़ा। अहा! वह क्या ही विराट् मूर्ति थी!—तपे सोने-जैसा रंग, चौड़ा माथा, विशाल वक्षस्थल, घुटनों तक लम्बे-लम्बे मांसल हाथ, लाल ओंठ, भौंरे जैसे झूमते हुए काले बाल, कान तक लम्बी आँखें! समस्त शरीर ब्रह्मतेज से चमक रहा था। इस अदृष्टपूर्व अपूर्व मूर्ति को देख मैं स्तम्भित, विस्मित और रोमाञ्चित हो गया! इस जीवन में मैंने कितने ही साधु-संन्यासियों को देखा है किन्तु वैसी मधुर मूर्ति उस दिन तक एक भी देखने में न आई थी। एक अभूतपूर्व आनन्द से हृदय भर गया।······एक अपूर्व भाव में मैं विभोर हो गया और उस अचेतनावस्था में भी आप ही आप मेरी देह उनके चरणों पर लोटने लगी।

उन्होंने स्नेह के साथ मेरा हाथ पकड़ा और उठाकर धीर-गंभीर एवं मधुर वाणी में कहा—"बाबा! सहसा रात्रि के अन्त में मुझे वृक्ष के नीचे देखने और तुम्हारा हाल कुछ न पूछकर चुपचाप साथ चलने को कहने से तुम कुछ घबड़ा गये और

आश्चर्यान्वित भी हुए थे। किन्तु इसके पूर्व ही तुम कौन हो, किस मतलब से घूम रहे हो, आज वृक्ष की खोह में कैसे रह गये, यह सब मुझे मालूम हो गया था। इसीसे मैंने कोई बात नहीं पूछी। रात में तुम्हारा विषय जानकर तुम्हें इस जगह लाने के लिए ही उस वृक्ष के नीचे बैठकर तुम्हारी राह देख रहा था!"

मैं अवाक् हो गया। वह मेरी बात पहले ही कैसे जान गये थे? सहसा मैं उनको एक सिद्ध महापुरुष समझने लगा।······ मैं अपने को उन्हें सौंपकर उनका शरणागत हो गया।

उन्होंने मीठी बातों से मुझे सान्त्वना दी। मेरे पूर्व तथा वर्तमान जीवन के कितने ही गुप्त रहस्य बताये और योग तथा साधन-कौशल भी सिखाना स्वीकार कर लिया।···

फिर उसी महापुरुष ने टीले के पास जाकर कौशल से एक बड़ा लम्बा-चौड़ा पत्थर हटाया। बड़ा ही आश्चर्यकारक दृश्य था! अहा! क्या ही प्रकाण्ड गुफा। मैंने उसमें जाकर देखा कि गुफा एक छोटे घर की तरह प्रशस्त और परिष्कृत है। उन्होंने मुझे हाथ से लिखे योग और स्वरोदय शास्त्र के कितने ही ग्रन्थ पढ़ने को दिये। मैं अपने को भाग्यवान समझ सिद्ध महापुरुष के साथ उनके आश्रम में सुख-स्वच्छन्दता से निवास करने लगा। प्रति दिन वह मुझे लड़के की तरह प्यार कर स्नेह के साथ योग और स्वर-शास्त्र के गूढ़ स्थानों की विशद व्याख्या करके शिक्षा देने लगे।··· मैंने वहाँ तीन महीने से कुछ अधिक समय तक निवास किया और सिद्ध मनोर्थ होकर कृतज्ञ एवं भक्ति-गद्‌गद् चित्त से उनकी

चरणवन्दना कर विदा के लिए प्रार्थना की। उन्होंने "मुझे पहले के पहाड़ी गाँव में पहुँचा दिया।"

वहाँ से लौटकर श्री निगमानन्दजी पबना जिले के हरिपुर गाँव में १२ वर्ष तक योगाभ्यास करते रहे। फिर गौहाटी में रह-कर समाधि का अभ्यास किया। कई दिनों तक समाधि में पड़े रहते। एक रात चुपके कामाख्या पहाड़ के श्री भुवनेश्वरी मन्दिर के पीछे निर्जन स्थान पर कुल-कुण्डलिनी शक्ति को विधिवत् जगा-कर निर्विकल्प समाधि में प्रवेश कर गये। उस समाधि का उन्होंने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। भिन्न-भिन्न ज्योतियों के दर्शन की बात लिखकर कहते हैं—'साथ ही अनुभव होने लगा कि एक-एक लोक का दर्वाज़ा खुल रहा है। सब लोकों को पार करता हुआ अन्त में एक अखण्ड ज्योतिर्मय मण्डल में जा पहुँचा। अनन्त ज्योति में अहंभाव का प्रसार होने से मैं निर्विकल्प समाधि में पहुँच गया। उस अवस्था की बात मैं कह नहीं सकता। उसी अवस्था में उस प्रकाश के पुञ्ज के भीतर मेरे 'मैं' के दर्शन हुए और 'मैं गुरु' यही स्फुरणा हुई। अचानक देखा कि घोर अन्ध-कार से गुज़र रहा हूँ; निकलने का कोई रास्ता नहीं है। धीरे-धीरे निर्गुण से सगुण अवस्था में अवतरित हुआ तथा सत्य-लोक, तपलोक आदि से उतरता हुआ अन्त में भूलोक में आ पहुँचा। धीरे-धीरे देश, फिर आसाम, फिर कामाख्या, फिर ब्रह्म-पुत्र, फिर पहाड़ के वनस्पति दीखने लगे। धीरे-धीरे वह भुवनेश्वरी देवी का मन्दिर दीखा। बाद में अपनी स्थूल देह पर दृष्टि पड़ी

और उसी समय मैं देह के भीतर घुस पड़ा। 'मैं गुरु हूँ' यह ज्ञान लेकर मेरा व्युत्थान हुआ।'

स्वामी निगमानन्द में अनेक अलौकिक शक्तियाँ थीं। उन्होंने अनेक योग-पद्धतियों का वैज्ञानिक अध्ययन किया था। स्वरोदय-शास्त्र एवं वायुविज्ञान में उनकी अबाध गति थी। तंत्र और हठ-योग में भी वह सिद्ध थे।